CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

विरूपाक्षपञ्चाशिका

विद्याचक्रवर्तिकृतविवृतिसमेता

कुलपतिश्रीविद्यानिवासमिश्रप्ररोचनया
समलङ्कृता

सम्पादकः
म० म० गोपीनाथकविराजः

सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः
वाराणसी

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

YOGATANTRA-GRANTHAMĀLĀ

[Vol. 16]

VIRŪPAKṢAPAÑCĀŚIKĀ

WITH THE COMMENTARY

OF

ŚRĪ VIDYĀCAKRAVARTĪ

FOREWORD BY

DR. VIDYANIWAS MISRA

VICE-CHANCELLOR

INTRODUCTION BY

ĀCĀRYA ŚRĪ SITĀRĀMA ŚASTRĪ KAVIRĀJA

EDITED BY

M. M. GOPĪNĀTHA KAVIRĀJA

Ex-Head of the Dept. of Yogatantra

Sampurnanand Sanskrit University

Varanasi

VARANASI

1992

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

Research Publication Supervisor--
Director, Research Institute,
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi.

□

Published by—
Dr. Harish Chandra Mani Tripathi
Publication Officer,
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi-221 002.

□

Available at--
Sales Department,
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi-221 002.

□

First Edition—500 Copies
Price Rs. 16-00

□

Printed by—
Ghan Shyam Upadhyaya
Manager,
Sampurnanand Sanskrit University Press
Varanasi.

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

योगतन्त्र-ग्रन्थमाला

[१६]

विरूपाक्षपञ्चाशिका

विद्याचक्रवर्तिकृतविवृतिसमेता

कुलपतिश्रीविद्यानिवासमिश्रप्ररोचनया

आचार्यश्रीसीतारामकविराजकृतभूमिकया च समलङ्कृता

सम्पादकः

म० म० गोपीनाथकविराजः

योगतन्त्रविभागाध्यक्षचरः,

सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य

वाराणसी

वाराणस्याम्

२०४९ तमे वैक्रमाब्दे १९१४ तमे शकाब्दे १९९२ तमे खैस्ताब्दे

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

अनुसन्धानप्रकाशनपर्यवेक्षकः—
निदेशकः, अनुसन्धान-संस्थानस्य
सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालये
वाराणसी ।

•

प्रकाशकः—
डॉ० हरिश्चन्द्रमणित्रिपाठी
प्रकाशनाधिकारी,
सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयस्य
वाराणसी–२२१००२.

•

प्राप्तिस्थानम्—
विक्रय-विभागः,
सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयस्य
वाराणसी–२२१००२.

•

प्रथमं संस्करणम्, ५०० प्रतिरूपाणि
मूल्यम् –१६=०० रूप्यकाणि

•

मुद्रकः—
घनश्याम-उपाध्यायः
व्यवस्थापकः,
सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयीय-मुद्रणालयस्य
वाराणसी ।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

प्ररोचना

'विरूपाक्षपञ्चाशिका'' के अलग से प्रकाशित करने का उद्देश्य है कि यह एक महत्त्वपूर्ण तन्त्र-ग्रन्थ है। अत्यन्त संक्षेप में इसमें चार स्तरों का विवेचन हुआ है। पहला स्तर है 'विश्वरूप' और 'विश्वोत्तीर्ण', यही परा संविद् है। द्वितीय स्तर 'प्रकाशरूप' है। तृतीय स्तर 'विमर्शरूप' और चतुर्थ स्तर 'विभूतितत्त्व व्यक्तरूप' है। इनमें क्रमशः शिवशक्ति-सामरस्य, शिवशक्ति और जगत् का भान होता है। ये ही इस ग्रन्थ के चार स्कन्ध हैं। इनके नाम क्रमशः 'विश्वात्मा', 'प्रकाशात्मा', 'विमर्शात्मा' और 'विभूति' हैं। इस ग्रन्थ की भूमिका में तन्त्रपरम्परा के साधकाचार्य श्री **दत्तात्रेयानन्द नाथ** ने इन चारों स्कन्धों का विवरण दिया है और इसका विषय-संक्षेप किया है, जिससे इस ग्रन्थ की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। मूलग्रन्थ पर वृत्ति भी इसके साथ प्रकाशित की जा रही है। इस संक्षिप्त ग्रन्थ में त्रैपुरसिद्धान्त की स्थापना हुई है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह ग्रन्थ विद्वत्समाज का सम्मानभाजन होगा। इस ग्रन्थ पर भूमिका-लेखन एवं विषय-संक्षेप के लिए मैं श्री दत्तात्रेयानन्द नाथ के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

वाराणसी
वासन्तिक-नवरात्र
वि० सं० २०४९

विद्यानिवास मिश्र
कुलपति
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

॥ श्रीः ॥

भूमिका

विरूपाक्ष-पञ्चाशिका संवित् सिद्धान्तों (प्रत्यभिज्ञादर्शन) का अनुपमेय ग्रन्थ है। तन्त्रशास्त्र में संवित् तत्त्व को द्वैताद्वैत से विलक्षण सामरस्यात्मक अनुत्तरतत्त्व स्वीकृत किया है।

यही शाक्तदर्शन का विश्वमय और विश्वोत्तीर्ण तत्त्व है। भावनोपनिषद् में "निरुपाधिका संविदेव कामेश्वरः, सदानन्दपूर्णा स्वात्मैव परदेवता ललिता" इस वाक्य से संवित् तत्त्व का प्रतिपादन किया है। त्रैपुरसिद्धान्त-प्रतिपादक ग्रन्थों में तुरीयातीत प्रकाशविमर्श-सामरस्यात्मक परब्रह्मस्वरूपिणी परामृतशक्ति श्रीचक्राधिष्ठात्री श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरी पराभट्टारिका को संवित् तत्त्व माना है। "इयं हि तुरीया संवित् पराभट्टारिका तत्तत् सृष्ट्यादिभेदानुद्वमन्ती संहरन्ती च महापूर्णा कृशा चोभयरूपा चानुभयात्मा अक्रममेव स्फुरन्ती स्थिता"। इस वाक्य को उद्धृत करके श्रीगोपीनाथ जी कविराज ने इसे शाक्तमतानुसार वास्तविक सिद्धान्त प्रतिपादन किया है। शैवाद्वैत के आचार्य श्री अभिनव गुप्त ने भी 'तन्त्रालोक' के उपोद्घात में संवित् को ही मौलिक तत्त्व के रूप में निर्दिष्ट किया है। यथा—

संवित्तत्त्वं स्वप्रकाशमित्यस्मिन्किन्नु युक्तिभिः।
तदभावे भवेद् विश्वं जडत्वादप्रकाशकम् ॥ (तं० १०)

इसी को "तन्त्रसार" में संक्षिप्त करके कहा है—'इति एक एव प्रकाशः, स एव च संवित्, अर्थप्रकाशरूपा हि संविद् इति सर्वेषामत्र अविवाद एव'।

इस ग्रन्थ के विवृतिकार श्रीविद्याचक्रवर्ती ने स्वविवृति को संवित्-सिद्धान्त-सिद्धार्थसार-संग्रहरूपिणी कहकर निरूपित किया है। विरूपाक्ष-पञ्चाशिका को योगतन्त्र-ग्रन्थमाला के तन्त्रसङ्ग्रह के प्रथम भाग में प्रथम स्थान देकर श्रीकविराज जी ने इसकी गरिमा को महिमा-मण्डित किया। आप्ततन्त्रग्रन्थों के व्याख्याकार आचार्यों ने सिद्धान्तों के प्रमाण रूप में इसके पद्यों को उद्धृत किया है और इसे प्रत्यभिज्ञादर्शन का मौलिक ग्रन्थ माना है। अस्तु, अब इसके विषयवस्तु का किञ्चित् आस्वादन किया जाय।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

कदाचित् कौतुकाविष्टचेता आगमशास्त्रप्रणेता नटराज भगवान् विश्वनाथ स्वप्रणीत आगमशास्त्र की सिद्धियों का वैलक्षण्य ख्यापित करने के लिये लीलाविग्रह धारण करके विरूपाक्षनाथ नाम से पर्यटन करते हुए इन्द्रपुरी पधारे। वहाँ संकल्प से प्रादुर्भूत महापर्वतों के दृश्य को उपस्थित करके इच्छामात्र से कन्दुक-क्रीड़ावत् उनको संचालित करने लगे। मदमत्तगजसमररसिक देवराज इन्द्र का इस कौतुकातिशय से ऐश्वर्याभिमान भंग हो गया, सर्वतोभावेन प्रपन्न होकर इस सिद्धि के रहस्य की जिज्ञासा से प्रश्न करने पर भगवान् विरूपाक्षनाथ ने समस्त संवित् सिद्धान्तार्थों के परम निष्कर्षभूत इस पञ्चाशिकाशास्त्र का उपदेश किया। यही इसका उपक्रम है —

गजगन्धसमररसिकेन्द्राय प्रकटिताद्रियुगसमरः।
निजसिद्धिबीजमस्मै कथयति पृष्टो विरूपाक्षः॥

"कथयति पृष्टः" इस प्रश्नलिङ्गानुमेय से शक्तिपात द्वारा उपदेशार्हता से अधिकार प्राप्त होने पर शाब्दी दीक्षा के रूप में पञ्चाशिका का उपदेश किया।

अनधिकारी को तत्त्वोपदेश करना निषेध है और संवित् सिद्धान्तों का प्रकाशन तो नितान्त प्रत्यवायजनक है

"अन्यायात् कथनं कुर्वन्नकाले मृत्युमाप्नुयात्"।

अतः अदीक्षित के समक्ष आगमरहस्यों का गोपन करना, यह शिवाज्ञा सर्वथा अनुल्लङ्घनीय है। "कथयति पृष्टः" यह आगमों का अर्थी, प्रत्यर्थी भाव है इससे शक्तिपात द्वारा उपदेशार्हता सिद्ध होती है। कल्पसूत्रानुसार शाम्भवी, शाक्त, मान्त्री त्रिविध दीक्षा का विधान है। शाम्भवी द्वारा मलापनोदन, शाक्त द्वारा शक्तिपात से उपदेशार्हता, तदनन्तर मान्त्री का विधान वर्णित है। तन्त्रान्तरों में दृग्दीक्षा, स्पर्शदीक्षा आदि कई दीक्षाओं का पात्रानुसार विधान वर्णित है। तात्पर्यार्थ यह है कि अदीक्षित की तन्त्र, आगमों के क्रिया कलापों में अनर्हता होती है, अतः अधिकारसिद्धि के लिये दीक्षा नितान्त अपेक्षित है।

इस ग्रन्थ में विश्वात्मा, प्रकाशात्मा, विमर्शात्मा, विभूति, ये चार स्कन्ध हैं। पञ्चाशत् पद्यों को चार भागों में विभक्त करके प्रतिपाद्य विषय का

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

युक्तिपूर्ण विवेचन किया है। सर्वप्रथम विश्वात्मा स्कन्ध का रहस्य ओजस्वती विलक्षण कथनशैली से निरूपित किया है—

विमतिपदमङ्ग सर्वं मम चैतन्यमात्मनः शरीरमिदम्।
शून्यपदादीलावधि दृश्यत्वात् पिण्डवत् सिद्धम्॥

उपदेश्य को अभिमुख करने के लिये 'अङ्ग' शब्द से सम्बोधित करने का तात्पर्य है कि गुरु शिष्य को स्वात्मरूप प्रदान कर देता है। दीक्षाप्रकरणान्तर्गत परशुरामकल्पसूत्र में गुरुकृत्य वर्णित है कि "आचाराननुशिष्य हार्दं-चैतन्यमामृश्य, विद्यात्रयेण तदङ्गं त्रिः परिमृज्य, परिरभ्य मूर्धन्यवघ्राय-स्वात्मरूपं कुर्यात्" (प० क० सू० ४२)।

अतः कहते हैं--हे अङ्ग! (विमतिपदमिदं) यह तुम्हारा विकृत ज्ञान है, जो तुम ग्राहकाभिमानवश विश्व से स्वयं को भिन्न मान रहे हो। शिवाद्यवनि-पर्यन्त समस्त यह चिद्विलास है। चिच्छक्ति से कुछ भी भिन्न हो ही नहीं सकता; क्योंकि आत्मतत्त्व का लक्षण 'चैतन्य' है। ग्राहकाभिमानरहित होने से मेरा अनवच्छिन्न चैतन्य है, अतः मुझे समस्त विश्व पिण्डवत् प्रतिभासित होता है। अर्थात् यह शिव से पृथ्वीपर्यन्त दृश्यमान समस्त विश्व मेरा शरीर है। जैसे स्वशरीर में अस्मिता होने से उसके अवयव हस्तपादादिकों का तुम इच्छामात्र से आस्फालन कर सकते हो, तद्वत् विश्वबीज चैतन्य आत्मतत्त्व में अस्मिता होने पर उसके अवयव पर्वतादि का भी इच्छा मात्र से संचालन करना सम्भव हो जाता है। जिस तत्त्व का इस पद्य में दिग्दर्शन किया गया है, वह तत्त्व यद्यपि गुरुमुखैकमात्रगम्य स्वसंवेद्य तत्त्व है, तथापि अकारणकरुणकरुणावरुणालय 'ईशानः सर्वविद्यानाम् ईश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिः' परमशिवभट्टारक कालान्तर से तिरोहित स्वसंवि-न्मार्ग का दिव्यौघ, सिद्धौघ, मानवौघ परम्परा के माध्यम से पुनः पुनः नव-नवोन्मेष रूप में दिशानिर्देश का क्रम-संचालन करते रहते हैं। द्वैतवादी नास्तिक नागबोधि आदि बौद्धों के दुष्प्रभाव से उस ज्ञानस्रोत का प्रवाह विच्छिन्न होने पर श्रीवसुगुप्त को स्वप्नसंकेत से शिवसूत्रों की उपलब्धि का वृत्तान्त प्रसिद्ध है और उनके शिष्य भट्टकल्लट द्वारा उन सूत्रों पर विरचित स्पन्दकारिका भी सर्वविदित है। काश्मीरशैवाद्वैत के ईश्वरप्रत्यभिज्ञा, त्रिक-मत के मौलिक सिद्धान्त एवं शिवसूत्र स्पन्दकारिका से ही अनुप्राणित हैं।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

विरूपाक्षपञ्चाशिका के विश्वात्मा स्कन्ध में भी प्रत्यभिज्ञादर्शन के मूल सिद्धान्त 'चैतन्यमात्मा' इस शिवसूत्र के सार का ही प्रतिपादन है।

आगमशास्त्रों में ज्ञान-क्रियात्मक परिपूर्णस्वतन्त्र चैतन्य को ही आत्मतत्त्व स्वीकार किया। दृश्यमान समस्त विचित्र विश्व का निश्चित ही कोई प्रमाता है; क्योंकि विना प्रमाता के प्रमेयसिद्धि नहीं होती है। अतः सर्वज्ञत्व सर्वकर्तृत्वसम्पन्न पूर्ण स्वतन्त्र चेतनपदाधिरूढ़ आत्मतत्त्व है, वही शिव है।

भट्ट भास्कर ने इस सूत्र का तात्पर्य निरूपित करते हुए कहा है—

चैतन्यमात्मनो रूपं सिद्धं ज्ञान-क्रियात्मकम्।
तस्यानावृतरूपत्वाच्छिवत्वं केन वार्यते॥

नेत्रतन्त्र में भी यही प्रतिपादित है--

परमात्मस्वरूपन्तु सर्वोपाधिविवर्जितम्।
चैतन्यमात्मनो रूपं सर्वशास्त्रेषु पठ्यते॥

इस विश्व के स्रष्टा परमशिव मात्र लीला के लिये अपनी सर्वज्ञता सर्वकर्तृता शक्ति को संकुचित करके जीव रूप से क्रीड़ा करते हैं, इसलिए मूल आत्मतत्त्व प्रत्यक् चैतन्याभिन्न है और सर्वज्ञादि शक्तियों से संवलित है। पञ्चमहाभूत शरीर, मन, प्राण आदि पदार्थों से भिन्न अपितु इनको भी संचालित करने वाला नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वभाव प्रत्यक् चैतन्याभिन्न परिपूर्ण अनवच्छिन्न-चैतन्य आत्मा है, इसमें स्थिति होने से सर्वज्ञादि शक्तियों का आविर्भाव होता है। इससे कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं सामर्थ्य प्राप्त हो जाता है। यही पर्वतों से कन्दुकवत् क्रीड़ा का रहस्य है। यही इदन्ता अहन्ता के ऐक्य से समुद्भूत पूर्णाहन्ता की अवस्था है। इसे ही अनुत्तर तत्त्व भी कहा जाता है। इसे तन्त्रालोक में आचार्य अभिनवगुप्त ने अनिर्वचनीय सदसद्विलक्षण तत्त्व के रूप में प्रतिपादित किया है। यथा—

न सन्न चासत्सदसन्न च तन्नोभयोज्झितम्।
दुर्विज्ञेया हि सावस्था किमप्येतदनुत्तरम्॥ (तं० २।२८)

प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी में कहा है कि अन्तःस्थित चिदात्मदेव केवल इच्छामात्र से निरुपादन समस्त अर्थसमूह को उत्पन्न करता है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

चिदात्मैव हि देवोऽन्तःस्थितमिच्छावशाद्बहिः ।
योगीव निरुपादानमर्थंजातं प्रकाशयेत् ॥

इस चिदानन्द की प्राप्ति से जडात्मक देहादिकों में चिदैक्य-प्रतिपत्ति की दृढ़ भावना होने पर जीवन्मुक्तावस्था की प्राप्ति हो जाती है—

"चिदानन्दलाभे देहादिषु चेत्यमानेष्वपि चिदैक्यप्रतिपत्तिदार्ढ्यं जीवन्मुक्तिः" । (प्र० हृ०)

इस प्रकार 'चैतन्यमात्मा' इस शिवसूत्र के तत्त्व का आचार्यों ने विशद रूप में निरूपण किया है । विरूपाक्षपञ्चाशिका में भी विश्वात्म भाव प्राप्त करने के लिये चैतन्य आत्मतत्त्व में सर्वतोभावेन सर्वथा निष्ठ होना ही विश्वात्म भाव की प्राप्ति है । इसी भाव की प्राप्ति के लिये विश्वात्मा स्कन्ध के ७ पद्यों में युक्तिपुरस्सर विवेचन किया है । उसका संक्षिप्त सार इस प्रकार है ।

देहसम्बन्धी षड्विध अस्मिता को मात्र पिण्ड में न करके संपूर्ण विश्व में अहंभाव करना विश्वात्मभाव की सिद्धि है और इसके किसी एक अंश में अहन्ता करना जीवन्मृतवत् ही है ।

उत्क्रम्य विश्वतोऽङ्गात् तद्भागैकतनुनिष्ठताहन्तः ।
कण्ठलुठत्प्राण इव व्यक्तं जीवन्मृतो लोकः ।।

पाञ्चभौतिक नश्वर शरीर में अहन्ता ममतारूपी अभिनिवेश से रागद्वेष की उत्पत्ति होती है और उससे आधिव्याधि, शोक-सन्तापादिकों से अभिभूत हो जाता है, यही जीवन्मृतावस्था है । विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह चिति शक्ति ही शरीर, मन, बुद्धि, अहङ्कार, इन्द्रिय-मण्डल, प्राणवर्ग को चेष्टित करती है । इसके पृथक् होने पर मृत्यु के अनन्तर सावयव शरीर यथावत् रहने पर भी इसमें किञ्चित् मात्र भी स्पन्दन या क्रिया सम्भव नहीं है । अतः कर्तृत्व शक्ति तो उस चेतन आत्मतत्त्व में ही निहित है, यह नितान्त सत्य है ।

ईश्वरता, सर्वज्ञता, सर्वकर्तृता, स्वतन्त्रता, चित्स्वरूपता आदि 'शिवोऽहं' इस पूर्णाहन्ता के पर्यायवाचक हैं । अतः ज्ञानक्रियात्मक चैतन्य आत्मतत्त्व में अहन्ता का समावेश 'शिवोऽहं' की भावना से इच्छामात्र से अन्तःस्थित चिदात्मदेवता विना उपादान के समस्त वस्तुओं की उत्पत्ति कर देता है । जैसे शरीर में ही अस्मिता अहन्ता" होने पर जडीभूत हाथों का इच्छा

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

मात्र से संचालन होता है। उसी तरह चेतनतत्त्व में अहन्ता का पूर्णरूप से समावेश होने पर पर्वतों का भी संचालन सम्भव है।

देहेऽस्मितया यद्वज्जडयोरास्फालनं मिथो बाह्वोः।
इच्छामात्रेणेत्थं गिर्योरपि तद्वशाज्जगति ॥ (वि० प० ६)

इस प्रकार विश्वात्मा स्कन्ध में चिदात्मभाव के द्वारा पूर्णाहन्ता की स्थिति का वर्णन है। इसी स्थिति को उपायान्तरों से प्राप्त करने के लिये प्रकाशात्मा, विमर्शात्मा स्कन्धों में तन्त्रशास्त्र के गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन किया है।

चारों स्कन्धों का सार इस प्रकार है—विश्वात्मा स्कन्ध में स्वयं से भिन्न प्रतीत विश्व में स्वशरीर की ही भावना करना, विमर्श शक्ति के द्वारा पूर्णाहन्तारूप विश्वशरीर की सिद्धि का वर्णन किया गया है।

प्रकाशात्मा द्वितीय-स्कन्ध में देह और देही आदि भेद-भावों का निराकरण करने के लिये अहन्ता का प्रकाश स्वरूप में वर्णन करते हुए प्रकाश ही परा आदि वाणियों के रूप में प्रकट होने वाला शब्दब्रह्म का स्वरूप है। यही आभास्य और आभासकता, ग्राह्य-ग्राहकता, वेद्य-वेदकता, चेत्य-चिदात्मकता आदि के रूप में प्रस्फुटित होता है। षोडश, नव, षट् चक्र आदि उपासना, पद, मन्त्र, वर्ण, तत्त्व, भुवन, कला, षडध्वा के रूप में यही प्रकाश समस्त विश्व को अनुप्राणित करता है। लौकिक मार्तण्ड के रूप में समष्टि बाह्य जगत् को और हृदय त्रिकोणान्तर्स्थित चिदर्क रूप में व्यष्टि जगत् को आभासित करता है। शक्त्यण्ड, मायाण्ड, प्रकृति अण्ड, पृथिवी अण्ड आदि अनन्त कोटि मृत अण्डों (अचेतन विश्व) को चेतना प्रदान करता है। इसी के द्वारा जडात्मक विश्व में चैतन्य का आविर्भाव होता है। अतः स्वयं में प्रकाश रूप के प्रत्यभिज्ञान द्वारा चेतन आत्मस्वरूप की भावना करना प्रकाशात्मा स्कन्ध का सार है।

विमर्शात्मा तृतीयस्कन्ध में पूर्ववर्णित विश्वात्मा और प्रकाशात्मा से विश्वात्म भाव का असम्भावना एवं विपरीत भावना के द्वारा उपराग न हो, एतदर्थं उसी अहन्ता का 'अनस्तमित प्रकाश' के अन्तर्यामी रूप में विविध उपपत्तियों के द्वारा सूक्ष्म विवेचन किया गया है। सः, त्वम्, अहम् इस प्रथम, मध्यम, उत्तम पुरुष के विजातीय व्यपदेश भेद का निराकरण करने के लिये प्रथम, मध्यम पुरुष का उत्तम पुरुष अहम् में ही पर्यवसान सिद्ध किया गया। उस विमर्श शक्ति के द्वारा चराचरात्मक

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

समस्त जगत् में ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय के समस्त अवयवों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन करके विमर्शशक्ति की मृदु, मध्य, तीव्र भावना का वैशिष्ट्य प्रतिपादन किया है । ज्ञातृ-ज्ञान-ज्ञेयानामभेदभावनं श्रीचक्रपूजनम्' इस भाव की उपलब्धि के लिये विमर्शात्मा तृतीय स्कन्ध का मनन मार्मिक रहस्यों के बोध के लिये परम उपयोगी है ।

चतुर्थ विभूति-स्कन्ध में पूर्ववर्णित भावनाओं की प्रामाणिकता के लिए विविध सिद्धियों के आविर्भाव का वर्णन किया है । विभिन्न प्रतीति-प्रकारों के निरूपण में प्रबुद्धादि प्रमाताओं के भावों का ही प्राधान्य प्रतिपादित किया गया है । पञ्चाशिका में अप्रबुद्धादि पञ्चप्रमाताओं का वर्णन है । एवं तन्त्रान्तरों में वर्णित त्रिपुटियों के अनुसार बुद्ध, प्रबुद्ध, सुप्रबुद्ध, मन्त्र, मन्त्रेश्वर, मन्त्रमहेश्वर, पशुप्रमाता, प्रमाता, परमप्रमाता सकल, प्रलयाकल, विज्ञानाकल आदि त्रिपुटी का वर्णन उपलब्ध होता है । अस्तु, इन भावों से समुद्भूत स्वल्प सिद्धियों के प्रलोभन का त्याग करके शुक, वामदेव आदि सिद्धों के अनुसार पूर्णाहन्तास्वरूप शिवत्व भाव को प्राप्त करना ही सारभूत है ।

सिद्धियाँ अपूर्णख्याति हैं, शिवता का समावेश पूर्णख्याति है । अतः विमर्श के द्वारा इदन्ता का अहन्ता में लय करके विश्वात्मभाव से सर्वज्ञत्व सर्वकर्तृत्व आदि स्वयं आविर्भूत विभूतियों से संवलित परमैश्वर्य को प्राप्त करना ही समस्त उपदेशों का सारसारस्व है । इसके द्वारा शिवयोगियों की यामली सिद्धि का वर्णन किया गया है । जैसा कि महार्थमञ्जरी में कहा है–

"अहो संसारसुखकेलि, अहो सुलभं मोक्षमार्गे सौभाग्यम् ।
त्रुटितान्तक-कलङ्का अहो शिवयोगिनां यामली सिद्धिः" ॥

इदन्ता अहन्ता के ऐक्य से समुत्पन्न पूर्णाहन्तारूपी संवित् का साक्षात्कार "प्रत्यभिज्ञान" इस शास्त्र का उपदेश सार है । यह संवित् सिद्धान्तों का सारभूत शास्त्र है । यद्यपि मैंने श्लोकानुक्रम से राष्ट्रभाषा में इसका सारांश लिखने का प्रयास किया है, तथापि इसकी विस्तृत विवेचना नितान्त अपेक्षित है । विस्तारभय से मैंने यत्किञ्चित् वर्णन प्रस्तुत किया, उसकी आगम-वचनों के द्वारा ही परिसमाप्ति भी अपेक्षित है। समस्त जगत् शिवाभिन्न है । यही संवित् सिद्धान्तों का सार है, यथा –

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

यदैव विदितं विश्वं तदानीमेव चिन्मयम् ।
यन्नास्ति भागो वेद्योऽसौ नाथ यो वेदकाद्बहिः ।।

वेद्यो वेदकतामाप्तो वेदकः संविदात्मताम् ।
संवित् त्वदात्मा चेत् सत्यं तदिदं त्वन्मयं जगत् ।।

त्रिपुटीमयं समस्तं तत्र च ज्ञेये च ज्ञातरि च समम् ।
दृढग्रन्थिर्ज्ञानकला कलयति त्रैलोक्यमेककलम् ।।

शेष में तन्त्रसंग्रह के प्रथम भाग के द्वितीय संस्करण के प्रकाशनावसर पर इसके सम्पादक म० म० गोपीनाथ कविराज महोदय का स्मरण होना स्वाभाविक है, जिनके अमोघ प्रयास से ऐसे उच्चकोटि के वरिष्ठतम तन्त्र-ग्रन्थों का दर्शन सर्वसाधारण के लिये सुलभ हुआ। एवं वर्तमान कुलपति प्रो० श्रीविद्यानिवास मिश्र महोदय भी शतशः साधुवादास्पद हैं, जिनके अनुपमेय पुरुषार्थ से योगतन्त्र-ग्रन्थमाला का पुनर्मुद्रण प्रारम्भ हुआ।

यथासमय अपेक्षित ग्रन्थों को सुलभ कराने के लिये सरस्वतीभवन पुस्तकालय के पुस्तकाध्यक्ष डॉ० विजयनारायण जी मिश्र भी साधुवाद के अधिकारी हैं। सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय, वाराणसी के प्रकाशनाधिकारी डॉ० हरिश्चन्द्रमणि त्रिपाठी के प्रशंसनीय क्रिया-कलाप से मुदित होकर पराम्बा से प्रार्थना करते हैं कि वे दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशन में इनको पूर्ण सम्बल प्रदान करें। इति शम् ।।

दत्तात्रेयानन्दनाथ
(सीताराम कविराज)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

विरूपाक्षपञ्चाशिका का प्रतिपाद्य विषय-संक्षेप

समस्त भूताधिपति विश्वकल्याणपरायण भगवान् परमशिवभट्टारक आगम-सिद्धियों का अतिशय द्योतन करने के लिये लीला विग्रह धारण करके विरूपाक्षनाथ नाम से भ्रमण करते हुए एक बार परमैश्वर्य के अभिमान से मत्त देवराज इन्द्र के समक्ष इच्छामात्र से महापर्वतों को आविष्कृत करके उनका कन्दुकक्रीड़ावत् दृश्य उपस्थित किया। उस विचित्र कौतुक को देखकर इन्द्र का ऐश्वर्याभिमान भङ्ग हो गया सर्वात्मना प्रपन्न होकर इस रहस्य की जिज्ञासा प्रकट की। इन्द्र को सर्वभावोपपन्न जानकर शक्ति-पात से अधिकारी बनाकर समस्त संवित् सिद्धान्तों का परम निष्कर्ष पञ्चा-शिका शास्त्र का उपदेश किया। इसके उपक्रमोपसंहार के आदि, अन्त के श्लोकों को छोड़कर पचास श्लोकों में ही उपदेशसार प्रतिपादित है। प्रथम श्लोक उपक्रम का है। विश्वात्मा, प्रकाशात्मा विमर्शात्मा, विभूति, ये चार स्कन्ध इस शास्त्र में हैं। सर्वप्रथम विश्वात्मतत्त्व-पूर्णाहन्ता की स्थिति का प्रतिपादन करते हैं।

विमतिपदमङ्ग···· ······ · २।

हे इन्द्र! यह तुम्हारी विमति है जो तुम इस शिवाद्यवनिपर्यन्त विश्व से स्वयं को पृथक् अनुभव करते हो। यह दृश्यमान समस्त विश्व मेरा शरीर हैं; क्योंकि चेतनपदाधिरूढ चैतन्य आत्मा ही विश्व का मूल है। वह तुम्हारे ग्राहकाभिमान होने से चैतन्य अवच्छिन्न हो गया है। मेरा चैतन्य अन-वच्छिन्न है, उस तत्त्व से पृथक् कुछ हो ही नहीं सकता है। अतः मेरी उस तत्त्व में स्थिति होने से यह समस्त विश्व मेरा ही शरीर है। उससे मैं पृथक् नहीं। तुम उस तत्त्वज्ञान से रहित होने से विश्व से स्वयं को पृथक् अनुभव करते हो। जैसे दृश्य होने से इस पिण्ड को ही तुम स्वशरीर मानते हो, उसी तरह इदन्तया दृश्यमान होने से यह समस्त विश्व मेरा ही शरीर है।

यहाँ 'दृश्यत्वात्' हेतु है। तब यह शङ्का होती है कि केवल दृश्यमान होने मात्र से ही शरीरत्व नहीं है; अपितु अहन्तया प्रतीत होने से अभिनिवेश है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

विश्व इदन्तया प्रतीत होता है और शरीर अहन्तया, तब इसका एकत्व कैसे सिद्ध होगा ? इसका निराकरण करने के लिये कहते हैं --

सम्पन्नोऽस्मि कृशोऽस्मि .... ३ ।

१. सम्पन्नता, २. कृशता, ३. इन्द्रियों की पटुता, ४. प्रसन्नता, ५. श्वसन, ६. सुषुप्ति, सम्पन्नोऽस्मि कृशोऽस्मि आदि ६ स्थानों में अस्मिता का अभिनिवेश देखा जाता है। 'अहम्' अभिमान सभी को स्वानुभवसिद्ध है। इस प्रकार देह से भिन्न स्वाभिमत विषयों में अहम् अभिमान है, तो दृश्य होने से विषयों को भी शरीर ही मानना पड़ेगा। यदि कहो कि नहीं, तो देह इन्द्रियादि भी शरीर नहीं हैं। अतः इस पिण्ड में अस्मिता इससे जो वस्तु बहिर्भूत हैं, उनमें इदन्ता, यह तो एक बड़ी विषमता होगी और इसको अविचारित रमणीय ही कहा जायगा।

यदि यह कहें कि प्रतिनियत वस्तुओं में ही अस्मिता होती है, सर्वत्र कैसे होगी ? इसका उत्तर है--

विषयशरीरेन्द्रियधी ...... ४ ।

पूर्वोक्त षट् स्थानों में जो अस्मिता प्रसिद्ध है, वह भी उस चिति की ही है, ग्राहक जो स्वयं शून्य में निमग्न है, उसकी नहीं। अतः प्रसिद्ध जो षट् अस्मिता रूपी चिति है, उसको शिवाद्यवनिपर्यन्त वस्तु (समस्त विश्व) में धारण करने से नित्यशुद्ध प्रत्यभिज्ञा के दृढ़ अनुसन्धान से विश्वदेहत्व प्रत्यभिज्ञान सम्पन्न हो जायगा। तात्पर्य यह है कि उक्त षट् स्थानों में जो अस्मिता है, वह चिति की ही है, ग्राहक की नहीं। अनवच्छिन्न प्रकाशात्मक चिति की प्रतिनियत विषयों में अस्मिता उत्पन्न नहीं होती है। उसकी तो अस्मिता सर्वत्र होती है ; क्योंकि उससे भिन्न कोई वस्तु है ही नहीं; जैसे कटक, केयूर, कुण्डल, हार आदि सभी सुवर्ण, घट, सराव उदञ्चनादि समस्त मृत्तिका हैं। इस प्रकार इस नित्यसिद्ध अस्मिता का प्रतिपत्ति-दार्ढ्य के विमर्श से नित्यसिद्ध विश्वशरीरत्व का ज्ञान सम्पन्न हो जायगा।

इस प्रकार उक्त न्याय से तो समस्त लोक ही विश्व-शरीर है; परन्तु ऐसा देखा नहीं जाता, केवल पिण्ड मात्र में ही अस्मिता परिनिष्ठित है, यह प्रत्यक्षसिद्ध है, इसको कैसे अन्यथा किया जा सकता है ? इसका उत्तर ५-६ वें श्लोक में करते है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

उत्क्रम्य विश्वतोऽङ्गात्...... ५।

इस शिवाद्यवनिपर्यन्त विश्वशरीर से पृथक् होकर विमर्शशून्य होकर उस विश्व के किसी एक भाग में निष्ठित होना, अर्थात् सुर-नर-तिर्यक् आदि किसी एक तनु में दृढ़प्ररूढ़ अहंभाव होना, कण्ठलुठत् प्राणवत् 'जीवन्मृत' जीता हुआ भी मृतक के समान है; क्योंकि राग-द्वेष, अहन्ता, ममता से समुत्पन्न आधि-व्याधि, शोक-सन्तापों से सन्तप्त होना जीवन्मृत के समान ही है। इसमें कोई अपलाप नहीं है। इसमें हेतु का विचार करने से स्व' का अविमर्श लक्षणरूपी माया है, यदि इसमें विमर्श किया जाय तो समस्त विश्वशरीर शिव ही है।

इसको दृढ़ करने के लिये अकाटच युक्ति देते हैं--

देहेऽस्मितया यद्वज्जडयो .... ६।

इस देह में दृढ़ अस्मिता होने से जैसे उसके अवयव जड़ हाथों का इच्छा मात्र से परस्पर आस्फालन सम्भव है, उसी प्रकार विश्वमूल चैतन्य आत्म-तत्त्व में अस्मिता होने से उसके अवयव पर्वतों का भी इच्छा मात्र से संचालन करना सम्भव है। भगवान् विरूपाक्षनाथ देवराज इन्द्र को कहते हैं कि तुम्हारा इस देह में अहं दृढ़ अभिनिवेश और इच्छा, यही करास्फालन में हेतु है, दूसरा हेतु नहीं है। इसी प्रकार मेरा भी इस विश्व में दृढ़ अभिनिवेश और इच्छा है। यही पर्वतों के आस्फालन करने का हेतु है। अतः इस विश्व में अहम् के अभिनिवेश के शैथिल्य से अनैश्वर्य की प्रतीति होती है। उस चिद्विलास चिति-शक्ति आत्मतत्त्व में दृढ़ अहंभाव होने से नित्यसिद्ध विभूतियों का आविर्भाव हो जाता है।

अब कहते हैं कि केवल अस्मिता और इच्छा मात्र से करास्फालन नहीं होता है, इसके साथ बिन्दु, प्राण, शक्ति आदि भी सामग्री है। इसका उत्तर है--

बिन्दुं प्राणं शक्तिं मन .... ७।

बिन्दु, सूक्ष्म अहंप्रतीति, प्राण, बुद्धि, अहंकार, इन्द्रियमण्डल, शरीर, इन सब में प्रवेश करके इनका भी संचालन करने वाली उस अहन्ता को सर्वत्र धारण करो।

अब यह शङ्का होती है कि यह जो अहन्ता है, केवल भावना मात्र से

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

विकसित होती है, उसमें ईश्वरत्व कर्तृत्व आदि धर्म कैसे सम्भव हैं ? इसका उत्तर है—

ईश्वरता कर्तृत्वं स्वतन्त्रता ... ... ८।

ईश्वरता, कर्तृत्व, स्वतन्त्रता, चित्स्वरूपता आदि समस्त अहन्ता का ही पर्याय तत्त्वज्ञ मानते हैं। जैसे जैसे उस चैतन्य आत्मतत्त्व का विमर्श के द्वारा अभिज्ञान होता है, वैसे वैसे उन सिद्धों में सर्वज्ञत्व, सर्वकर्तृत्व आदि विभूतियों का आविर्भाव हो जाता है। केवल विमर्श के द्वारा उस तत्त्व में निष्ठा आवश्यक है। आगमशास्त्र का चैतन्य आत्मतत्त्व स्वयंसिद्ध है, विश्व-मूल है। अतः इसके लिये कोई प्रमाण की अपेक्षा नहीं है। यही महार्थमञ्जरी में कहा है—

आत्मा खलु विश्वमूलं तत्र प्रमाणं न कोऽपि अर्थयते।
कस्य वा भवति पिपासा गङ्गास्रोतसि निमग्नस्य ॥

इस प्रकार स्वसंवित् तत्त्व में अहन्ता का भाव होना ही विश्व-शरीरत्व (विश्वात्मा भाव) की सिद्धि है।

प्रकाशात्मा द्वितीय-स्कन्ध

प्रथम स्कन्ध के आठ श्लोकों में विश्व-शरीर का प्रतिपादन करके देह-देहिभाव रूपी भ्रम का अपनोदन करने के लिये प्रकाशात्मा द्वितीय-स्कन्ध को प्रारम्भ करते हैं। ग्राहकता के विगलन से स्वरसंवाहिनी स्वयं स्फुरित चिति शक्ति अहम् रूप में स्फुरित नहीं होती है, अतः यह अहन्ता कैसे हो सकती है ? इस शंका का निराकरण करने के लिये चार पद्यों में प्रकाश के स्वरूप का वर्णन करते हैं।

प्रत्यवमर्शात्मासौ चितिः ... ९।

विमर्शरूपी स्वयं स्फुरित चिति शक्ति ही परा वाणी है। वर्णमाला के आद्यन्त वर्णों का प्रत्याहार करके 'अहम्' रूप में निरन्तर स्फुरित होती है। इसी का नाम अहन्ता है। तात्पर्य यह है कि आत्मतत्त्व अनिर्देश्य है। उसका इदन्तया निर्देश अशक्य है; परन्तु उस तत्त्व के बोध के लिये शब्द-ब्रह्म के रूप में प्रतिपादन करके इदन्तया निर्देश करते हैं। आद्यन्त प्रत्याहृत

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

वर्णगण, अर्थात् वर्णमाला का आद्य अक्षर "अ" और शेष अक्षर 'ह' इसका समीचीन व्यवहार करने के लिये 'अहम्' व्यपदेश हुआ। यह स्वरूपज्योति ही अन्तरतम में सूक्ष्म अनपायनी वाणी है। "स्वरूपज्योतिरेवान्तः सूक्ष्मा वागनपायिनी" यही शब्दब्रह्म का सूक्ष्म रूप परा वाणी है।

स्वपरावभासनक्षम आत्मा विश्वस्य ·· ····१०।

स्वयं का और नील-पीतादि विषयों का अवभासन करने वाला चेतन-अचेतन समस्त जगत् का आत्मा प्रकाश है। वह देश-कालादिकों से अपरिच्छिन्न है। आगमशास्त्रों में उसका 'अहम्' शब्द से व्यपदेश किया है। वह समस्त वेद्यों का अवभासक है, स्वयं वेदक है। उस वेदक का क्या प्रमाण हो सकता है—'अरे ज्ञातारं केन विजानीयात्' उस प्रकाश में जब सिसृक्षा हुई, तब पश्चाशत् वर्णमाला का आविर्भाव हुआ, इसी का नाम विमर्श है। प्रकाश परम शिव है और उसकी शक्ति है वर्ण-मातृका, इन वर्णों से ही समस्त वाङ्मय का एवं समस्त विश्व का सृजन हुआ। आगमशास्त्रों में इसका प्रत्याहार करके 'अहम्' शब्द से व्यपदेश किया है। अतः जो विमर्श है वही प्रकाश है. 'एको ज्योतिरभूद् द्विधा'। 'अग्निदाहकयोरिव' प्रकाश, विमर्श में अभेद है।

अब यह शङ्का होती है कि 'इदम्', 'अहम', 'प्रकाश' इस त्रिधा भाव की उपलब्धि हुई, अतः एकत्वविवक्षा कैसे सिद्ध होगी? इसका ११-१२ वें पद्यों में समाधान करते हैं।

विच्छिन्नाविच्छिन्ने···· ··· ·· – ११।

एकः स आत्मनासौ ·· ——····— ·· १२।

निरूपित प्रकाश की धर्मभूत दो प्रथा हुई। एक विच्छिन्नरूप परस्पर व्यावृत्तिरूप 'इदन्ता' और दूसरी अवच्छिन्न रूप अनुवृत्तिरूप 'अहन्ता'। चेत्यपद में 'इदन्ता' आभास्य और चितिपद में 'अहन्ता' आभासक। जैसे 'यह नील है, यह पीत है' इस प्रकार 'इदं' प्रथा परस्पर व्यावृत है और 'अहं' प्रथा अनुवृत्तिरूप है 'अहं नीलं वेद्मि, अहं पीतं वेद्मि' इस प्रकार यह अनुवृत्त है।

वह प्रकाश तो अद्वितीय है ···प्रकाश भी वही और ग्राहक भी वही, ग्राह्य भी वही, ग्राहक भी वही, वेद्य भी वही और वेदक भी वही। यह एक वस्तु परस्पर विरुद्ध स्वभाव वाली कैसे हो सकती है? इसका उत्तर देते हैं कि—प्रकाश देशकाल के क्रम से रहित है और वह एक ही है।'इदं नीलम्,इदं पीतम्'

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

यह इदन्ता में भेद है। प्रकाश वेदक है, 'अहं नीलं वेद्मि' इस प्रकार अनुवृत्त है, भेद का आश्रय है। भेद व्यावृत्त है और अभेद अनुवृत्त है। देश-कालकृत भेद चेत्य में ही होता है। उसके आश्रयभूत चित् में भेद का भ्रम उपाधि से भासित होता है। जब शुद्ध चिति का उदय होता है, इन्दता और अहन्ता का ऐक्य होता है, तो उपाधि का विगलन होकर पूर्णाहन्ता की स्थिति में ग्राह्य-ग्राहक, वेद्य-वेदक आदि समस्त एक स्वरूप ही भासित होते हैं।

इस प्रकार प्रकाश व ग्राहक में कोई भेद नहीं है। निरूप्यमाण जो वेद्य है, वह भी प्रकाश से अभिन्न है, इसी अभिप्राय से १३वाँ पद्य प्रतिपादित करते हैं—

स्वाङ्गे चिद्गगनात्मनि · · ·······१३।

वह प्रकाश स्वस्वरूपभूत चिद्गगन में अनवच्छिन्न चिन्मय रूप में खेचरी, गोचरी, दिग्चरी आदि सम्भेद-विभेदरूप शक्ति-लहरियों से शिवाद्यवनि-पर्यन्त समस्त विश्व का सृजन और अवभासन-ध्वंसन करता है। जैसे समुद्र अपनी लहरियों के सम्भेद-विभेद से तरङ्ग-बुद्बुद का सृजन और संहरण करता है। समुद्र, तरङ्ग-बुद्बुद में अभेद है। उसी तरह कार्य-कारणरूप अन्वयव्यतिरेक से प्रकाश का भी ग्राह्य-ग्राहकरूप में अभेद ही सिद्ध होता है। समुद्रतरङ्गवत् प्रकाश और उसकी खेचर्यादि शक्तियों में विचार करने से केवल प्रकाश की ही उपलब्धि होती है।

ग्राह्य-ग्राहक आदि कोई भी वस्तु पृथक् नहीं है, सर्वात्मक प्रकाश ही सब कुछ है। ग्राह्यादि भेदरूप भ्रम का जो संस्कार है, उसके उन्मूलन के लिये कुछ युक्तियाँ बताते हैं। जिसकी दृढ़ प्रतिपत्ति से भावना करने से उस चिति का प्रत्यभिज्ञान सिद्ध हो जाता है।

रूपादिपञ्चविषयात्मनि··· ··· ·· १४।

अब भोग्य और भोक्ता का विचार प्रस्तुत करते हैं। भोग्य-भोक्ता रूप यह विश्व है। विचार करने पर रूपादि पञ्च विषय भोग्य हैं और चक्षु आदि पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ उनकी भोक्ता हैं। भोग्य रूपी विश्व का उद्भव उस चिति शक्ति से ही है। "चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः" और उसकी अनन्त शक्तियाँ ही अनन्त भोग्य-भोक्तृभाव से विद्यमान हैं, अतः आनन्त्य की भावना दुश्शक है, एतदर्थ एकमात्र चिति ही सर्व भावों में भासित है, उसी चिति की ही सर्वत्र भावना करनी चाहिये। जैसे स्पन्दकारिका में प्रतिपादित है—

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

यस्मात् सर्वमयो जीवः सर्वभावसमुद्भवः।
तत्संवेदनरूपेण तादात्म्यप्रतिपत्तितः ।।

तेन शब्दार्थचिन्तासु न सावस्था न या शिवः।
भोक्तैव भोग्यभावेन सदा सर्वत्र संस्थितः ।। (स्प० का० २८-२९)

इस प्रकार विश्व को भोग्य-भोक्तादि पञ्चविध रूपों में प्रतिपादित करके उन सबका चिदात्म भाव में विलापन करके, पुनः भावना-लाघव के लिये उसे त्रिरूप में संक्षिप्त करके चिदात्मकत्व का उपदेश करते हैं।

सोमरविवह्निलक्षण········ १५ ।

'सोम, रवि, वह्नि' यह त्रितयात्मक इन्द्रिय, भोग्य, भोक्ता रूप विश्व है। भोग्य सोमलक्षण, चक्षु आदि इन्द्रिय रविलक्षण हैं, भोक्ता वह्नि-लक्षण होता है। यह षड्विध विश्व है। सोमादि तीनों देवताओं का पारमार्थिक स्वरूप भोग्यादि त्रितय रूप ही है। इन सबका उद्भव उस विमर्शमय बिन्दु से होता है। अतः बिन्दु ही उनका प्राण है। बिन्दु की ही यह षड्विध विकृति है। अतः इस प्रकार इन षड्विध भावों में भी सोम, रवि, वह्नि त्रितयात्मक चिदात्म की ही दृढ़ प्रतिपत्ति करनी चाहिये।

इसी भाव को और स्पष्ट करते हैं—

व्यक्तं हि पदार्थात्मकमिदं ···· १६ ।

स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकार का विश्व है, दृश्यमान जगत् स्थूल है, सूक्ष्म जगत् चिति है। यह पदार्थात्मक स्थूल विश्व उद्भवादि कारणों से उस बिन्दु में ही संलग्न है। उसी बिन्दु से ही उद्भव और उसी में लय होता है। अतः जल-तरङ्गादिवत् उस चिति से बहिर्मुख नहीं है। सदा सर्वत्र समस्त रूप में वही चिति व्याप्त है।

नानाविध सिद्धियों की इच्छा से इस चिति की ही विविध रूप में कल्पना करके उसकी उपासना करते हैं; परन्तु उपास्य वस्तु में कोई अन्तर नहीं है—

षोडशधैनं नवधा षोढा··· ······१७ ।

पूर्वप्रतिपादित 'बिन्दुरूपचिति' आधार भेद के लक्ष्य से षोडशादि आधारों में परिक्लृप्त है। विविध सिद्धियों की कामना से षोडश चक्र, नव-

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

चक्र, षट् चक्र, त्रिधा ब्रह्म-ग्रन्थि, विष्णु-ग्रन्थि, रुद्र-ग्रन्थि भेद से साधक उपासना करके उन उपाधियों के भेद से तत्तत् सिद्धियों को प्राप्त करते हैं; परन्तु यह सब साधनाएँ साधारण उपासकों के लिये हैं, जिनको उस तत्त्व का बोध नहीं हुआ है। सिद्ध पुरुष तो चिदैक्य-प्रतिपत्तिदार्ढ्य जीवन्मुक्ति रूप रसास्वादन के लिये उस चिद्गगनचन्द्रिका का ही एकात्म भाव से निरन्तर चिन्तन करते हैं।

प्रकाश कण के रूप में ही षडध्वा है एवं वह प्रकाश तुम्हीं हो, यह दो श्लोकों में वर्णन करते हैं—

यस्य विमर्शस्य कणः ··· ······ ····१८।

स्वेन विना मृतमण्डं···· ·· ··· ···१९।

प्रकाश रूप धर्मी का विमर्शरूप जो धर्म है, उसका वर्ण-पद, मन्त्र-तत्त्व, भुवन, कला, शब्द, अर्थ रूपी यह षडध्वा एक अंशमात्र है, यह निरूपित जो प्रकाश है, वह परम मार्तण्ड है और यह जो लौकिक मार्तण्ड है, उसको भी यही उज्जीवन 'प्रकाशित' करता है. अतः यह परम मार्तण्ड है, जिसके विना समस्त लोक जड़वत् है। शिवाद्यवनिपर्यन्त विश्व को उन्मिषित 'उज्जीवन' करने वाला है। नभोगत सूर्य का अनुप्राणन करने से यह परम मार्तण्ड है। यह हृदयरूपी परम आकाश में विद्यमान है. क्या वह तुमने नहीं देखा? तात्पर्य यह है कि उसके विना देखे वस्त्वन्तर का दर्शन असम्भव है। वह प्रकाश 'त्वमेव असि'। आत्मदर्शन के पश्चात् ही अन्य वस्तु का दर्शन होता है, अतः सबको प्रथम आत्मदर्शन होता है। इस प्रकार विरूपाक्षनाथ ने इन्द्र को आत्मतत्त्व की प्रत्यभिज्ञा करवायी।

वही प्रत्यभिज्ञात प्रकाश विश्वोत्पादक है, यह विवेचनात्मक रूप से प्रतिपादित करते हैं—

चिद्गगनक्षीरोदं ·· ···· · २०।

वह प्रकाशरूप परमशिव उस अनवच्छिन्न चैतन्यसमुद्र को स्वयं इच्छा-रूपी मन्दर से संक्षोभित 'कार्योन्मुख' करके उसकी खेचर्यादि रूप स्वशक्ति ऊर्मियों से ब्रह्माण्डरूपी इन्दुमण्डल का उद्गम कर स्वेच्छा से स्वाभिन्न विश्व को स्वभित्ति पर अवभासित करते हैं। जैसे कहा है—

जगच्चित्रं समालिख्य स्वेच्छातूलिकयात्मनि।
स्वयमेव समालोक्य प्रीणाति भगवान् शिवः॥

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

अब अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड के कक्ष्यारूपी अवान्तर भाग का विवेचन करते हुए स्वयं में ही उसकी 'सत्ता' स्वानुभव साक्षीत्व का प्रतिपादन करते हैं।

शक्तिर्माया प्रकृतिः पृथ्वीति··· ··· ····२१।

शक्त्यण्ड मायाण्ड, प्रकृत्यण्ड, पृथिव्यण्ड यह चतुर्विभाग अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड और चतुर्दश भुवनादि विभाग मेरे में ही स्थित हैं, अर्थात् परमप्रकाश रूप शिव में ही त्रैकालिक रूप में स्थित हैं।

तृतीय विमर्शात्मा-स्कन्ध

इतने विवेचन से प्रकाश ही विश्वात्मक है यह युक्ति, अनुभव उपपत्ति से प्रतिपादित किया गया। अब इस निर्णीत तत्त्व में असम्भावना विपरीत भावना से उपराग न हो, इसके लिये विमर्शात्मक तृतीय-स्कन्ध प्रारम्भ करते हैं। प्रकाशात्मा स्कन्ध के उपसंहार में कहा गया कि 'सर्वं मयि स्थितम्'' इस कथन से आधाराधेय भाव से जो भेदप्रतीति होती है, उसका निराकरण करते हैं—

अहमेकोऽनस्तमितप्रकाशरूपोऽस्मि ···· २२।

'अनस्तमित' अर्थात् नित्योदित प्रकाशमय मैं अद्वितीय तत्त्व हूँ। बुद्धि आदि अन्तःकरण, सूर्य आदि ज्योतियों का अन्तरात्म प्रकाश रूप मैं स्थित हूँ और तमोगुणात्मक मायादिकों में भी मैं ही स्थित हूँ। प्रकाशात्मक मेरे अन्तर में स्थित होने से ही तेज तेज रूप में और तम तम रूप में भासित होते हैं। वे तेज और तम अधिष्ठानभूत मेरे में स्थित हैं। प्रकाशात्मक मैं एक ही भावाभावात्मक जगत् रूप में परिस्फुरित होता हूँ। अतः भेद का कोई अवकाश ही नहीं है।

सः, त्वम्, अहम् इस तीन प्रकार के आभास का अभेद सिद्ध करने के लिये दो पद्यों में विवेचन करते हैं—

प्रथमो मध्यम उत्तम इति पुरुषा······ ····२३।

युष्मच्छेषापोहवदहमिति यद्भाति ······ २४।

सः, त्वम्, अहम् यह विजातीय व्यपदेश के योग से भेद लक्षित है। यह परस्पर व्यावृत्त है। प्रथम, मध्यम, उत्तम ये तीन पुरुष हैं। विमर्श रूप से मेरे महापुरुष से व्यतिरिक्त कोई तत्त्वान्तर नहीं है। प्रथम, मध्यम पुरुष

२

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

व्यावृत्त हैं और अहम् उत्तम पुरुष अनुवृत्त है। प्रथम और मध्यम पुरुष का पर्यवसान उत्तम पुरुष में ही होता है। जैसे तत्त्वमसि का पर्यवसान अहं ब्रह्मास्मि में होता है। अत: 'त्रिस्कन्ध' तीन प्रकार का आभास है, इसमें कोई भेद नहीं है।

तीन श्लोकों में अब ग्राहक और ग्राह्य भाव का भी ऐक्य प्रतिपादन करते हैं—

द्यावापृथिवीदेशः ……… २५।
धूमावती तिरोधौ ……… २६।
धूमावती पृथिव्यां ……………२७।

द्यौ, पृथिवी, यह देश, दिन और रात्रि यह काल का जो प्रसार है, उसका भान और तिरोधान भी मेरी शक्तियों के ही कार्य हैं। पहले कहा गया है कि स्वशक्ति लहरियों से ही इस जगत् का सृजन, ध्वंसन होता है। वह मेरे से बहिर्भूत नहीं है। भान, तिरोधान करने वाली शक्तियों के द्वारा कृत्यान्तर भी अनुष्ठित होते हैं।

तिरोधान में धूमावती, पुष्टि में ह्लादा, भान में भास्वती, क्षोभ में स्पन्दाख्या, व्याप्ति में विभ्वी ये पाँच शक्तियाँ है। ये शक्तियाँ अप्रत्यक्ष हैं; किन्तु कार्य से ही इनके स्वरूप का निश्चय होता है।

धूमावती पृथिवी में, ह्लादा जल में, भास्वती अग्नि में, वायु में स्पन्दा, आकाश में विभ्वी, इस प्रकार इन पञ्च महाभूतों की शक्तियों से समस्त जगत् व्याप्त है। इसके द्वारा उस चिदात्मा का पञ्चकृत्यकारित्व दर्शित किया गया है।

अवभासनादि शक्तियों के द्वारा निष्पादित जगत् विमर्श शक्ति के स्पर्श मात्र से प्रकाश रूपी अर्णव में सब का तादात्म्य हो जाता है, यह चार पद्यों में विवेचन करते हैं।

निजधर्मिणं प्रकाशं …… २८।

प्रकाश की विमर्शरूपी शक्ति ही शिव से पृथ्वीपर्यन्त समस्त विश्व का निर्माण करती है। प्रकाश धर्मी है और शक्ति धर्म है। वह प्रकाश्य वर्ग के स्वरूप को तात्त्विक रूप से व्यवस्थित करके समस्त वेद्यवर्ग का पर्यवसान उस धर्मी प्रकाश में ही करती है। उस प्रकाश की ही यह विमर्श शक्ति समस्त विश्व का निर्माण करती है। कारण रूप में प्रकाश है, अतः उस प्रकाश से सबकी अभिन्नता है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

ज्ञातृज्ञानज्ञेयात्मकमखिलं ....२९ ।

प्रकाश की विमर्शरूपी वह्निशिखा ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेयात्मक समस्त अन्य भावों को दग्ध करके प्रकाश रूपी शुभ्र भस्म अवशेष रखती है। तात्पर्य यह है कि मन और इन्द्रियों के द्वारा अनुभूयमान दृश्यमान जितने भी कृत्रिम अंश हैं, उन सबका मर्दन करके केवल प्रकाशात्मक शुभ्रभस्म अर्थात् अकृत्रिम आनन्दघन, क्लेशादि कालुष्य से रहित सन्मात्र विभूति अवशेष रहती है।

अकठोरमद्विमर्शज्वालाग्रस्ते ....३० ।

अब यह कहते हैं कि विमर्श के अन्तर वेद्य अंश में तो भेद का लय हो जाता है; परन्तु वेदक वर्ग की 'अहं विसृष्टवान्' यह जो सूक्ष्म अहंप्रतीति है. वह तो अवशेष रहती ही है।

इसके लिये कहते हैं कि मद्विमर्श ज्वाला से ग्रस्त जो तिरोहित हो रहा भान है, उसमें वेदक की जो सूक्ष्म अहंप्रतीति है, वह एक अङ्गारवत् अवशेष रहती है। अर्थात् अन्तःस्थित जो सूक्ष्म वेदकांश है, वह किञ्चित् अवशेष अङ्गारवत् हो जाता है।

कात्स्न्र्येनाविष्टमिवारण्यपुराद्यग्निना............ ३१ ।

वही विमर्श की ज्वाला यदि तीव्र होती है तो सवभेदोपसंहरण स्वभाव वाले विमर्श से जो अहं प्रकाश है, उसका निश्शेष रूप से विमर्श करने से शिवादि भूम्यन्त जो विश्व है, इसके 'जैसे दावानल से अरण्यपुरादि भस्मसात् हो जाते हैं' उसी तरह नानाविध जो भेद हैं, वे विगलित होकर उस प्रकाश में एक रूप हो जाते हैं।

सम्पूर्ण रूप से विमर्श करने पर विश्व के समस्त भेद-भ्रम का अपनोदन हो जाता है। इसका विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करते हैं—

अन्तर्मुखं स्वरूपं ज्ञेयस्य .... ३२।

इस जगत् में भावों का अन्तर्मुख और बहिर्मुख ये दो स्वरूप है। बहिर्मुख स्वरूप स्थूल है, व्यावृत और अपारमार्थिक है। अन्तर्मुख स्वरूप सूक्ष्म है, अनुवृत्त है एवं पारमार्थिक है। इस स्थिति में ज्ञेय पदार्थ जो घटादि हैं, उनका जो अन्तर्मुख पारमार्थिक स्वरूप है, वह घट रूपी ज्ञान है। उस घट के बाह्य

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

आकार का ज्ञान वहीं से उदय होता है और वहीं लय होता है। अब जो ज्ञाता है, वह इस घटज्ञान के उदय, स्थिति का कारणभूत ग्राहक अभिमन्तृता रूप से अन्तर्मुख रूप ही है। इस प्रकार ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय का मूल उद्गम स्रोत एक मात्र चिति ही है, ऐसा इस विमर्श स्कन्ध के प्रारम्भ में दशम श्लोक में कहा है–'अहमेकोऽनस्तमितप्रकाशरूपोऽस्मि'। इससे प्रकाश स्वरूप 'अहम्' तत्त्व ही चरम तत्त्व है, इससे व्यतिरिक्त कुछ भी नहीं है। दृग्गोचर होने से 'यह घट है' ऐसा विकल्प उत्पन्न होता है, इस उत्पत्ति के पहले घट का घटत्व या वस्त्वनन्तर व्यपदेश करना अशक्य है; क्योंकि ज्ञेय का अन्तर्मुख स्वरूप ज्ञान है और ज्ञान का भी ज्ञाता के आधीन उदय और लय है, वह भी ज्ञाता का अन्तरतम रूप है, अतः ज्ञाता भी इस प्रकार चिति ही है और उस चिति का "अहम् एकः" ही तत्त्व है। इस प्रकार समग्र रूप से विचार करने पर ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय का निर्विवाद एक ही रूप सिद्ध होता है। भावनोपनिषद् में यही प्रतिपादित है—"ज्ञातृज्ञानज्ञेयानामभेदभावनं श्रीचक्रपूजनम्।"

प्रकाश की अपेक्षा से ज्ञेयादि तीनों में अभेदाभाव प्रतिपादन करके, अब ज्ञेयादि में भी परस्पर अभेद प्रतिपादित करते हैं—

अक्रमता मे क्रमिकं ज्ञात्राद्यं···· ····· ३३।

प्रकाश सर्वत्र 'अनुस्यूत' अनुवृत्त है। इसमें व्यावृत्ति लेशमात्र भी नहीं है। अतः अक्रम है। ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय ये परस्पर व्यावृत्त होने से तीनों ही क्रमिक हैं और चिति सक्रम-अक्रम दोनों है। ज्ञातादिकों की अपेक्षा से सक्रम, प्रकाशापेक्षा से अक्रम। यह द्विरूप है। यह प्रबुद्ध की प्रतीति होने का प्रकार है। वस्तुतः ज्ञाता भी प्रकाश सदृश ही है, जैसे चिति आदि चतुष्टय की अनुवृत्ति से प्रकाश का अक्रमत्व है। उसी तरह ज्ञान, ज्ञेयादि अनुवृत्ति से ज्ञान, ज्ञेय की अपेक्षा ज्ञाता भी अक्रम है। 'ज्ञानं शक्तिरियम्' जैसे चिति ज्ञातादिकों की अपेक्षा सक्रम और प्रकाश की अपेक्षा अक्रम है, इस तरह ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय इन तीनों में भी कोई तत्त्वान्तर नहीं है, प्रकाश का तादात्म्य होने से। अविमर्श से ही भेदप्रतीति होती है। ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय का अभेद ही परम तत्त्वप्राप्ति में मुख्य हेतु है।

उपरोक्त विषय का ही मौलिक विवेचन करते हैं—

पीतादिषु हि न नीलं··· ·········३४।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

ऊपर कहा गया है जो कि ज्ञेय हैं, वह ज्ञेयान्तर की अपेक्षा से क्रमिक है। इसी का उदाहरण देते हैं, जैसे पीतादि वस्तुओं में जब नील का बोध नहीं होता है, तब 'पीत है' यही प्रतिपत्ति होगी। इसी प्रकार परस्पर व्यावृत्त होने से ज्ञेय पदार्थ ज्ञेयान्तर की अपेक्षा क्रमिक हैं। यहाँ चाक्षुष ज्ञान का भान होता है। इसी तरह श्रोत्रादि ज्ञान, ज्ञानशक्ति है और ज्ञाता सर्वत्र चाक्षुष श्रावणादि ज्ञान में अनुगत है।

इस प्रकार अवशिष्ट पद्यों (३५-४०) में ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय के अवयव का पृथक्-पृथक् प्रतिपादन करते हुए प्रकाश तत्त्व की सर्वत्र सत्ता प्रतिपादित है और विमर्श के द्वारा जितना भी भेद-भाव है, वह समस्त नष्ट होकर सर्वत्र प्रकाशैक्यात्म संवित् तत्त्व में स्थिति हो जाती है। इस प्रकार यह विमर्शात्मा स्कन्ध समाप्त हुआ।

चतुर्थ विभूति-स्कन्ध

अप्रबुद्ध, प्रबुद्धकल्प, प्रबुद्ध, सुप्रबुद्धकल्प, सुप्रबुद्ध इन पाँच प्रमाताओं की विभूतियों के आविर्भाव, भिन्न-भिन्न प्रतीतियों के प्रकार, चार श्लोकों में निरूपण करते हैं।

मत्स्थमपि भुवनवृन्दं बहिरिव ······· ····४१।

उस प्रकाशात्मा में समस्त भुवन स्थित होने पर भी भेदवादियों को सांख्यादि सिद्धान्तों से 'माया से' अभिन्न वस्तुओं में भिन्नता की प्रतीति होती है। ये अप्रबुद्ध कोटि के हैं और जो भवपदी अर्थात् जिनको इस संसार में राग नहीं है; किन्तु उसका संस्कार अभी विद्यमान है, वे भवपदी हैं, ये विद्या-प्रमाता हैं। सम्प्रज्ञात समाधि के पहले की कोटि में प्रविष्ट हैं, उन्हें सङ्कल्पादि रूप से किञ्चित् भिन्न की तरह भान होता है, इसका हेतु इनकी शुद्ध विद्या का उदय हो जाता है। ये प्रबुद्धकल्प कोटि के कहे जाते हैं।

अब जिसको ग्राहक-ग्राह्य में 'प्रकाश' और 'विमर्श' परम प्रमाता प्रकाश, और इदन्तया दृश्यमान इस विश्व में भिन्नता प्रतीत होती है, वह पशु है और वह उपदेश्य है।

ग्राहकमेवं त्वजडं जडमन्यत् ··· ······ ४२।

ग्राहक को चिदात्मक और ग्राह्य को जड़ यह जो मानता है, वह माया से विमोहित है, भेदवादी सिद्धान्तों का श्रवण, मनन करने से उसका स्वस्वरूप

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

आच्छादित हो गया है। वह आगम-दृष्टि से 'अणु' पशु कहा जाता है उसे सद्गुरु से उपदिष्ट होना चाहिये।

तात्पर्य यह है कि जो धर्म और अधर्म के क्षय से अन्य तन्त्रों में मुक्त कहे जाते हैं, वे संवित् शास्त्रों के उपदेश के लिये अधिकारी नहीं हैं, उनको सद्गुरु के द्वारा दीक्षित होने पर ही संवित् शास्त्र के उपदेश-श्रवण का अधिकार प्राप्त होता है। जैसा कहा है—

अन्यतन्त्रेषु ये मुक्ता धर्माधर्मक्षयान्नराः।
तेऽत्र रुद्राणवः प्रोक्ताः काल-कर्म-विवर्जिताः॥

इस प्रकार अप्रबुद्ध, प्रबुद्धकल्प के प्रतीति-प्रकार का विवेचन हुआ। अब प्रबुद्ध का विवेचन किया जा रहा है—

जडतात्मिकामिदन्तामथाजडत्वा ... ४३।

'द्विपदी' भेदाभेद दशा में अवस्थित इदन्तया दृश्यमान वस्तु को जड़, और अहन्तया वस्तु को अजड़, इन दोनों के समानाधिकरण से अभेद का आरोपण करके भेदांश का विलय करके 'इदम् अहम्' यह दृश्यमान जगत् मैं ही हूँ, इस प्रतीति वाला योगी ईश्वर तत्त्व तक पहुँचा हुआ होता है इसे ही प्रबुद्ध प्रमाता कहा जाता है।

अब सुप्रबुद्धकल्प और सुप्रबुद्ध के प्रतीति-प्रकार का विवेचन किया जाता है—

उद्भविनां केवलया निमग्नम् ... ४४।

अभेदप्रतिपत्ति लक्षण वाली कैवल्य दशा के उद्भव वाले प्रमाता के इदन्ता का जो प्रतीतिविषय 'वेद्यवस्तु' अहन्ता में विमर्शशक्ति से निमग्न हो जाता है, यह अहन्ता से आच्छादित अस्फुट इदन्ता रहती है। इसे सुप्रबुद्ध-कल्प कहते हैं, यह सदाशिव तत्त्व तक पहुँची हुई अवस्था है।

अब मग्नोन्मग्न उभयविध जो उन्मना अवस्था है, उससे पूर्णप्रकाश 'पूर्णाहन्ता' में स्थिति वाला सुप्रबुद्ध प्रमाता है। मग्नोन्मग्न का तात्पर्य है कि समुद्र में जैसे तरङ्गों का उद्भव और लय होता है, उसी तरह यह समस्त विश्व

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

भेदात्मक है। मुझसे ही उत्पन्न होता है और मेरे में ही लीन हो जाता है। मेरे से व्यतिरिक्त कुछ भी नहीं है, 'सर्वो ममायं विभव:' इस प्रकार स्वस्वरूप स्थिति को उत्पन्न करने वाली उन्मना अवस्था उत्पन्न हो जाती है। इसमें सङ्कल्प-विकल्पात्मक मन रहता ही नहीं है। इस उन्मना से अविचलपूर्णत्व सिद्धि हो जाती है, तब वह योगी सिद्ध होता है, इसे सुप्रबुद्ध प्रमाता कहते हैं। इस अवस्था में इच्छा मात्र से अभिमत विभूतियों का आविर्भाव होता है।

शेष आठ श्लोकों में दृढ़ भावना के द्वारा विभिन्न सिद्धियों का वर्णन है—

'भावनादार्ढ्यादाज्ञासिद्धिः" । (प० सू० १४)

रवि, सोम, तडित्, वज्र आदि में दृढ़ात्म भाव के द्वारा तत्तत् कार्यों की सिद्धि होती है, एवं गणपति, सरस्वती आदि देवताओं की प्रत्यूहशमन वाक्प्रवर्तन आदि सिद्धियाँ, पञ्च महाभूत आदि सिद्धियों का वर्णन करके शुक, वामदेव आदि सिद्धों का उद्धरण देकर जगद्गुरुत्व प्राप्ति का उपाय बताते हुए श्रीविरूपाक्षनाथ देवराज इन्द्र को पूर्णाहन्ता की ही स्थिति प्राप्त करने के लिये कहते हैं—

ख्यातिमपूर्णां पूर्णख्यातिसमादेशदार्ढ्यतः क्षपय।
सृज भुवनानि यथेच्छं स्थापय हर तिरय भासय च ॥ ५२ ॥

सब उपदेशों का निष्कर्ष सार बताते हैं कि अपूर्ण ख्याति और पूर्ण ख्याति ये दो प्रकार की ख्यातियाँ हैं, विभिन्न प्रकार की वर्णित जो सिद्धियाँ हैं, वह अपूर्ण ख्याति हैं, अत: सिद्धियाँ अपूर्णता हैं, उनको 'शिवोऽहं' इस प्रतिक्षण अनुसन्धान के द्वारा दूर करो। तदनन्तर पूर्णाहन्ता की स्थिति पूर्ण ख्याति है, उससे यथेच्छ भुवनों का सृजन, पालन, संहार आदि करने की सामर्थ्य प्राप्त होगी। यही 'प्रकाश-विमर्श' इदन्ता, अहन्ता की सामरस्य रूपी महासिद्धि है, इससे स्वस्वरूप का ज्ञान होता है और सर्वज्ञत्व, सर्वकर्तृत्व सामर्थ्य एवं पूर्णाहन्ता, परमप्रमाता, शिवोऽहं का भाव सुस्थिर हो जाता है।

इस प्रकार बोधित सम्यक् प्रकार से प्रत्यभिज्ञापित वह इन्द्र 'मैं स्वर्ग का ही अधिपति हूँ' इस संकुचित भाव का त्याग करके शक्ति तत्त्व के समावेश से स्वयं को शिववत् अनुभव किया। सम्मुख स्थित आचार्य श्रीविरूपाक्षनाथ-पाद को श्रीशिवरूप में देखा; क्योंकि आगमशास्त्र में गुरु ही शिव है, गुरु

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

से व्यतिरिक्त शिवान्तर की सम्भावना नहीं है। अतः बोध्य, बोधक में अन्तर तिरोहित हो गया एवं स्वयं का भी जगद्गुरु रूप 'साक्षात्कार' परमशिवत्व का प्रत्यभिज्ञान सम्पन्न हुआ।

विरूपाक्षपञ्चाशिका के सारांश का राष्ट्रभाषा हिन्दी में लिखना मेरा साहसिक प्रयासमात्र है। यह प्रत्यभिज्ञादर्शन का वरिष्ठतम ग्रन्थ है, इसकी सुविस्तृत विवेचना आवश्यक है, तभी संवित् सिद्धान्तों के गूढ़ रहस्यों का प्रकाश सम्भव हो सकेगा ।। इति शम्।

दत्तात्रेयानन्दनाथ
(सीताराम कविराज)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

विषयानुक्रमणिका

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
भूमिका	१-८
विषय-संक्षेप	९-२४
शरीरबाह्यतया प्रतीयमानस्य विश्वस्य स्वशरीरत्वम्	१-२
अस्मिताहन्तयोः स्वरूपनिरूपणम्	३-५
देहदेहिभावादिभ्रमबाधनाय प्रकाशस्य वैश्वात्म्यम्	६-७
प्रकाशग्राहकयोरभेदः	८
जगतः पञ्चधात्वेऽपि चिदात्मकत्वम्	८
चितिरेषा नानाप्रकारेणोपास्यते	९
प्रकाशस्य षडध्वरूपत्वम्	१०
प्रकाशस्य विश्वोत्पादकत्वम्	१०
चतुर्विभागस्याण्डस्य प्रतिपादनम्	११
वैश्वात्म्यस्यासम्भावनाविपरीतभावनादोषपरिहारः	१२
ग्राहकसामान्यापेक्षया ग्राह्यापेक्षया च चितेरभेदः	१२
भानतिरोधानादिकृत्यसम्पादिकाः पञ्च शक्तयः	१३
शक्तिस्वरूपपरामर्शः	१४
कात्स्न्येंन विमर्शाविष्टे जगति सर्वभेदभ्रमोपशमः	१५-१७
ज्ञातुः क्रमिकत्वस्य नित्यसोपाधिकत्वात् प्रकाशतादात्म्यम्	१८-२०
प्रबुद्धादिप्रमातृपञ्चकनिरूपणम्	२१-२२
सुप्रबुद्धस्येच्छामात्रेणाभिमतानां विभूतीनामाविर्भावः	२३
सर्वसिद्धिमूर्धन्यसिद्धिद्वयप्रतिपादनम्	२४-२५
शास्त्रोपसंहारः	२६

●

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

विरूपाक्षपञ्चाशिका

विद्याचक्रवर्तिकृतविवृतिसमेता

नमो विश्वशरीराय विश्वैकात्म्यावभासिने।
नित्यप्रत्यवमर्शाय शम्भवे विश्वसिद्धये ॥
संवित्सिद्धान्तसिद्धार्थसारसंग्रहरूपिणीम् ।
पञ्चाशिकां विरूपाक्षप्रोक्तां व्याकुर्महे वयम् ॥

इह विश्वानुग्रहैकरसिकः श्रीमान् परमशिवभट्टारकः परिगृहीतलीलाविग्रहः श्रीविरूपाक्षनाथपादनाम्ना परिभ्रमन् कदाचिद् दिविषदां नाथं गन्धसिन्धुरायोधनं पारमैश्वर्यमभिमन्यमानमधिगम्य तत्पुरस्तादिच्छामात्रेण प्रादुष्कृतमहाचलयुगलाहवस्तद्दर्शनकौतुकातिशयप्रशान्तैश्वर्यस्मये सर्वभावेनोपपन्ने तत्र तदवबोधनाय समस्तसंवित्सिद्धान्तार्थपरमनिष्कर्षभूतमेतत् पञ्चाशिकाशास्त्रमवतारयामास। तत्र प्रथमचरमयोः श्लोकयोरुपक्रमोपसंहाररूपत्वात् "शुकवामदेवयोः (५० श्लो०) इत्यस्य च प्रासङ्गिकत्वादनुपदेशरूपत्वम्। अवशिष्टाः श्लोकाः पञ्चाशद्रूपा इति शास्त्रमेतत् पञ्चाशिका। तत्र विमतिपदमित्यादिश्लोकसप्तकरूपेण प्रथमस्कन्धेन शरीरबाह्यतया प्रतीयमानस्य विश्वस्य शरीरत्वमुपपत्तिभिरवस्थापितम्। अथ देहदेहिभावलक्षणभेदभ्रमापासनाय प्रत्यवमर्शात्मेत्यादित्रयोदशश्लोकात्मना द्वितीयस्कन्धेन प्रकाशैकात्म्यं विश्वस्य वितत्य विवेचितम्। अथ प्रत्यभिज्ञातस्य प्रकाशैकात्म्यस्यासम्भावनाविपरीतभावनादिभिर्दोषैः संस्पर्शो मा भूदिति प्रत्यवमर्शप्रकाराः सप्रपञ्चं प्रदर्शिता अहमेकोऽनस्तमितप्रकाशेत्याद्येकोनविंशतिश्लोकात्मना तृतीयस्कन्धेन। अथ चतुर्थस्कन्धेन मत्स्थमपीत्यादिश्लोकैकादशकात्मकेनाप्रबुद्धप्रबुद्धादीनां प्रतीतिप्रकारोपन्यासपुरस्कारेण परापरसिद्धिप्रादुर्भावसरणिः पर्यन्ते महासिद्धिश्चोपदिष्टेति चतुःस्कन्धकमिदं शास्त्रम्। अवान्तर विशेषास्तत्र तत्रोपवर्ण्यन्ते।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

अथ ग्रन्थं व्याकुर्मः। तत्र शास्त्रमवतारयितुं पीठिकाबन्धमारचयति—

गन्धगजसमररसिकायेन्द्राय प्रकटिताद्रियुगसमरः।
निजसिद्धिबीजमस्मै कथयति पृष्टो विरूपाक्षः॥ १॥

पृष्ट इति प्रश्नलिङ्गानुमेयेन शक्तिपातेनास्य तत्त्वोपदेशार्हत्वादधिकारित्वमिन्द्रस्य सूचितम्। कथयति शाब्दीं दीक्षां प्रवर्तयितुमुपक्रमते॥ १॥

तत्रादौ शरीरबहिर्भावेन प्रतीयमानस्य विश्वस्य शरीरत्वं साधयितुं पञ्चावयवोपपन्नं वाक्यमुपन्यस्यति—

विमतिपदमङ्ग सर्वं मम चैतन्यमात्मनः शरीरमिदम्।
शून्यपदादीलावधि दृश्यत्वात् पिण्डवत् सिद्धम्॥ २॥

अङ्गेत्युपदेश्यमभिमुखीकरोति। विमतिपदमिदं शून्यपदादीलावधि सर्वं ग्राहकाभिमानिना त्वया देहबाह्यत्वेन चैतन्यात्मना मया देहत्वेन च प्रतीयमानत्वाद् विवादास्पदमेतदनाश्रितादिभूम्यन्तं विश्वं मम शरीरम्। तत्र हेतुः—दृश्यत्वादिति। यथा ते ग्राहकत्वादवच्छिन्नस्य दृश्यत्वात् पिण्डः शरीरम्, तथा मम चैतन्यात्मनोऽनवच्छिन्नस्य विश्वमेव दृश्यत्वाच्छरीरम्। उपनयस्यार्थात् सिद्धिमभिसन्दधानो निगमयति—सिद्धमिति। सर्वस्य ह्ययं स्वानुभवसिद्धोऽर्थः। यदा प्रतिनियतं नीलपीतादिविशेषरूपं ग्राह्यं प्रत्युन्मुखीभवति, तदायं ग्राहकः स्वयमप्यवच्छिन्नप्रकाशो भवति। स च प्रकाशावच्छेदो ग्राह्यावच्छेदोपाधिक एव। यदा पुनः सर्वमेव वस्तु सामान्यतोऽनुसन्धत्ते, तदा चैतन्यात्मकोऽनवच्छिन्नप्रकाशोऽयम्, देशकालादिप्रकाशकस्य देशकालादिभिरवच्छेदासम्भवात्। अतस्तदा दृश्यत्वाद् विश्वमेव शरीरम्। यदि तथा न स्यात् तदा ग्राहकपदे पिण्डोऽपि शरीरं न स्याद् दृश्यत्वाविशेषात्। अतो ग्राहकत्वलक्षणविशेषविगलने तवापि चैतन्यात्मनो विश्वमेव शरीरमित्युपदिष्टं भवति॥ २॥

ननु दृश्यत्वमात्रं देहत्वे न हेतुः, अपि त्वहन्तया प्रतीयमानत्वम्। प्रतीयते च पिण्डोऽहन्तया। विश्वं पुनरिदन्तया। अतः कथमुक्तार्थसिद्धिरित्यत आह—

सम्पन्नोऽस्मि कृशोऽस्मि स्निह्यत्करणोऽस्मि मोदमानोऽस्मि।
प्राणिमि शून्योऽस्मीति च षट्सु पदेष्वस्मिता दृष्टा॥ ३॥

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

सम्पद् गृहक्षेत्रादेर्विषयस्य धर्मः, कार्श्यं देहस्य, स्नेहश्चक्षुरादेरिन्द्रियस्य, मोदोऽन्तःकरणस्य, प्राणनं वायोः, शून्यता सुषुप्तपदस्य मायापर्यायस्य। एषु विषयादिषु षट्सु पदेषु, अस्मिता दृष्टा अहमभिमानस्तत्रापि स्वानुभवसिद्धः। इत्थञ्च सति यदा देहबाह्यत्वेनाभिमते विषयेऽहमभिमानः, तदा दृश्यत्वाद् विषयोऽपि शरीरम्। यदा तु नाहमभिमानः तदा देहेन्द्रियाद्यपि न शरीरम्। अतः पिण्डेऽस्मिता तद्वहिर्भूते वस्तुनीदन्तेति यद्वैषम्यमाशङ्कितं तदविमर्शमात्रकृतो विप्रलम्भ एवेति भावः॥ ३॥

ननु तथापि प्रतिनियतेषु विषयादिषु वस्तुषु षट्सु अस्मिता दृश्यते, न सर्वत्रेत्यत आह—

विषयशरीरेन्द्रियधीप्राणनिरोधप्रसिद्धयदस्मित्वाम्।
इत्थं चितिमखिलेऽध्वनि धारयतो विश्वदेहत्वम्॥ ४॥

विषयादिषु षट्सु येयमस्मिता प्रसिध्यति सा चितेरेवोपपद्यते, न तु ग्राहकस्य तस्य शून्यपदे निमग्नत्वात्। इत्थं षट्सु पदेषु प्रसिद्धयदस्मित्वां चितिं यदि अखिलेऽध्वनि धारयसि षडात्मनीव सर्वत्रैव शिवादौ धरण्यन्ते वस्तुनि नित्यशुद्धामेव प्रत्यभिज्ञां दार्ढ्येनानुसन्धत्से, तदा तवापि विश्वदेहत्वं प्रत्यभिज्ञाविषयो भविष्यतीति शेषः। उक्तनयेन षट्सु पदेष्वस्मिता चितेरेव न ग्राहकस्य। चितेश्चानवच्छिन्नप्रकाशात्मनः प्रतिनियतेष्वस्मिता नोपपद्यते, उपपद्यते च सर्वत्रैव। तामिमां चितेः सर्वत्रैव नित्यसिद्धामस्मितां प्रतिपत्तिदार्ढ्येन यद्यवमृशसि, तदा ते नित्यसिद्धमेव विश्वशरीरत्वं प्रत्यभिज्ञातं स्यादिति तात्पर्यम्॥४॥

ननूक्तनयेन सर्व एव लोको विश्वशरीरः प्राप्तः। न च तथा दृश्यते, पिण्डमात्रेऽहन्तायाः परिनिष्ठानात्। अतः प्रत्यक्षसिद्धमेतद् देहेऽभियन्तृत्वं कथमन्यथयितुं शक्यत इत्यत आह—

उत्क्रम्य विश्वतोऽङ्गात् तद्भागैकतनुनिष्ठिताहन्तः।
कण्ठलुठत्प्राण इव व्यक्तं जीवन्मृतो लोकः॥५॥

विश्वतोऽङ्गात् शरीरभूताद्विश्वस्मादेव शिवादेर्वस्तुत उत्क्रम्य अनुत्क्रान्तः सन्नपि स्वाविमर्शेनोत्क्रान्त इव भूत्वा तद्भागैकतनुनिष्ठिताहन्तस्तदन्तर्भूतायां कस्याञ्चिदेकस्यां तनौ सुरनरतिर्यगात्मिकायां दृढप्ररूढाहम्भावः। अत एव

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

कण्ठलुठत्प्राण इव लोको व्यक्तं जीवन्मृतो जन्तुजातमेतज्जीवन्मृतकल्पं सत्यं वर्तत एव। न तत्रापलापः कश्चित्। तत्र हेतुर्विचार्यमाणः स्वाविमर्शलक्षणा मायैव। विमर्शे तु लब्धे सर्वो विश्वशरीरः शिव एव ॥५॥

यत इत्थमतः—

देहेऽस्मितया यद्वज्जडयोरास्फालनं मिथो बाह्वोः।
इच्छामात्रेणेत्थं गिर्योरपि तद्वशाज्जगति ॥६॥

ग्राहकाभिमानिनस्ते देहेऽस्मितया मिथः करयोरास्फालनं यथेच्छामात्रेण, तथा चैतन्यात्मनो मम जगत्यस्मितया गिर्योरास्फालनमिच्छावशादेव प्रवर्तते। देहेदृढोऽहमभिनिवेश इच्छा चेतीयदेव हि ते करास्फालने हेतुः, न तु हेत्वन्तरं किञ्चित्। तथा ममापि जगति दृढोऽहमित्यभिनिवेश इच्छा चेति गिर्यास्फालने हेतुः। अतो जगत्यहमभिनिवेशशैथिल्यादेव तवैतदनैश्वर्यम्। तद्दाढर्येन तु नित्यसिद्धमेवैश्वर्यं तवाप्याविर्भविष्यतीत्यभिप्रायः ॥ ६ ॥

ननु अस्मितेच्छामात्रं चेतीयता न करास्फालनसिद्धिमनुपश्याम, अपि तु बिन्दुप्राणादिचेष्टालक्षणायां सत्यामेव सामग्रयाम्। अतः कथमुक्तार्थोपपत्तिरित्यत आह—

बिन्दुं प्राणं शक्तिं मन इन्द्रियमण्डलं शरीरं च।
आविश्य चेष्टयन्तीं धारय सर्वत्र चाहन्ताम् ॥७॥

बिन्दुः ग्राहकग्रहणादिप्रतीतिविशेषोदयादर्वाक्तनी स्वरसवाहिनी सामान्यभूता सूक्ष्माहं प्रतीतिः। प्राणोऽभिमानाध्यवसायाद्यन्तःकरणक्षोभहेतुरसुः। शक्तिपदेन बुद्धयहंकारौ परिगृहीतौ, तयोरध्यवसायाभिमानप्रतीत्यात्मनोः शक्तिरूपत्वात्। एतान् बिन्द्वादीनर्थान् आविश्य चेष्टयन्तीं स्वसंस्पर्शलवमहिम्ना परिस्पन्दयन्तीम् अहन्तां सर्वत्र धारय। येन देहे दृढप्रतिपत्त्या धारयसि, तेनैव च नयेन यदि सर्वत्र धारयसि, तदा तवेदृश्यः सिद्धयो नित्यसिद्धा एव स्थिता इति भावः ॥७॥

ननु येयमहन्ता, सा भावनामात्रपरिनिष्पन्नविकासा, न पुनरीश्वरत्वकर्तृत्वादिधर्मोत्कर्षशालिन्यनुभूयते। अतः कथमेवंविधसिद्धिसम्भव इत्यनास्थां शमयितुमाह—

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

ईश्वरता कर्तृत्वं स्वतन्त्रता चित्स्वरूपा चेति ।
एतेऽहन्तायाः किल पर्यायाः सद्भिरुच्यते ॥८॥

येयं त्वयाऽहन्ता प्रत्यभिज्ञाता सैव ईश्वरता सैव च कर्तृत्वं स्वातन्त्र्यं चिन्मयत्वं च । यो यः शास्त्रेष्वीश्वरत्वादिः सिद्धचतिशयः, स सर्वोऽप्यहन्तामय एव । अत ईश्वरत्वादयः पर्याया वाचकाः । अनेनाहन्तायामीश्वरत्वाद्यननुभवनिबन्धना येयमनास्था सा निरस्ता, यथा यथा प्रत्यभिज्ञानदाढर्यं तथा नित्यसिद्धानामीश्वरत्वकर्तृत्वादीनां विभूतीनामाविर्भाव इत्यासूत्रितं चेति शिवम् ॥८॥

इति विरूपाक्षपञ्चाशिकायां विवृतिसमेतायां विश्वशरीरत्वविवेचनस्कन्धः प्रथमः ॥

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

अथ द्वितीयः स्कन्धः

इत्थं प्रथमस्कन्धेन विश्वशरीरत्वं प्रतिपाद्येदानीं देहदेहिभावादिभेदभ्रमबाधनाय प्रकाशस्य वैश्वात्म्यं द्वितीयस्कन्ध आरभ्यते। तत्र ग्राहकत्वादिविशेषविगलनेन सामान्यरूपा येयं स्वरसवाहिनी चितिः, नेयम् अहमिति प्रतीयते, अतः कथमियमहन्तेत्याशङ्क्याह—

प्रत्यवमर्शात्मासौ चितिः स्वरसवाहिनी परा वाग् या।
आद्यन्तप्रत्याहृतवर्णगणा सत्यहन्ता सा॥ ९॥

प्रत्यवमर्शात्मा विमर्शस्वभावा। असौ सर्वस्यैव स्वानुभवसिद्धत्वाद् असावित्यध्यक्षतया निर्देष्टुमुचिता। चितिः विगलितचेत्योपरागा चेतनस्य स्वरूपेणावस्थितिः। स्वरसवाहिनी निरोधकाभावादनिशं स्फुरद्रूपा। सा विमर्शमयत्वाद् वाक्। तत्रापि स्वरूपज्योतिष्ट्वेनैव प्रकाशनात् स्वरूपव्यतिरिक्तपश्यन्त्यादिरूपा नेयम्, अपि तु परैव, यदागमः—"स्वरूपज्योतिरेवान्तः सूक्ष्मा वागनपायिनी" (वा० प० स्वो० १।१४२) इति। शुद्धवाग्रूपत्वाद् येयं वर्णात्मिका, सा प्रत्याहारयुक्त्या गृहीताभ्यामकारहकाराभ्यामहन्तेति निरुच्यते, न पुनरहमिति प्रतीयमानतयैवेयमहन्ता॥ ९॥

नन्वहन्ता नामाहमो धर्मः। स कोऽन्य उपलभ्यते, यः प्रत्यवमर्शरूपचितिव्यतिरिक्तोऽहंव्यपदेशमर्हतीत्यत आह—

स्वपरावभासनक्षम आत्मा विश्वस्य यः प्रकाशोऽसौ।
अहमिति स एक उक्तोऽहन्ता स्थितिरीदृशी तस्य॥१०॥

स्वं निष्कृष्टप्रकाशात्मकं परं च प्रत्यवमर्शादिनीलान्तमवभासयितुं शक्तश्चेतनाचेतनात्मकस्य जगतः स्वात्मभूतो योऽयमस्ति प्रकाशः, स देशकालादिभेदकानां स्वात्मन्यसम्भवाद् एकोऽद्वितीयः सन्नागमेषु अहमिति आम्नातः। यस्य समनन्तरनिरूपितचरी प्रत्यवमर्शात्मिका दशैव अहन्ता। अत्रायमाशयः—योऽयं प्रत्यवमर्शादिनीलान्तस्य वेद्यस्यावभासको वेदनैकस्वभावः सर्वप्रमितिभाक् प्रकाशो नासौ स्वयमिति पर इति वा व्यपदेशमर्हति, तयोर्वेद्य-

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

त्वात् । अतः स एक एव, तस्य भेदकस्य प्रमाणस्यासम्भवात् । तस्य प्रत्याहृताभ्यामकारहकाराभ्यामहमित्युक्तिरागमेषु । तत्रापि यद्यपि अहेति प्रकृतिमात्रमर्थवत्, तथापि केवलायाः प्रकृतेर्व्यवहारानर्हत्वादहमिति प्रत्ययसध्रीचीनतया व्यवहारः । तस्य कारणातायां येयमुद्भूतप्रत्यवमर्शता साऽहन्तेति ॥ १० ॥

नन्विदमिति वेद्यम्, अहमित्यहंप्रत्ययात्मको ग्राहकः, समनन्तरनिरूपितः प्रकाशश्चेति त्रितयमुपलभामहे । कथमुक्तार्थसिद्धिरित्यत आह—

विच्छिन्नाविच्छिन्ने इदमित्यहमित्युभे प्रथे तस्य ।
आभास्याभासकतां स्फुटयन्त्यौ चेत्यचित्पदयोः ॥११॥

तस्य निरूपितस्य प्रकाशस्य धर्मभूते द्वे प्रथे भवतः—एका विच्छिन्ना मिथो व्यावृत्तिरूपा इदमित्येवमात्मिका, अन्या त्वविच्छिन्ना इदंप्रथापेक्षयाऽनुवृत्ता । तत्रेदंप्रथा चेत्यपदे आभास्यतां स्फुटयति, अहंप्रथा त्वाभासकतां चित्पदे । इदम्प्रथा हि नीलमिदं पीतमिदमिति परस्परव्यावृत्तिरूपा । नहि तस्यामप्रसृतायां नीलादावाभास्यता प्रकाशते । अहम्प्रथा तु नीलं पीतं च वेद्मीत्यनुवृत्तिरूपा । तत्प्रथनैकनिबन्धनमाभासकत्वं चित्पदे ॥ ११ ॥

एवं स्थिते—

एकः स आत्मनासौ नहि क्रमोऽस्तीह देशकालाभ्याम् ।
भेदिनि मिथः स युक्तश्चेत्ये भेदाश्रयः खलु सः ॥१२॥

स प्रकाश आत्मना एकोऽद्वितीय एव, न तु प्रकाशो ग्राहकश्चेति द्विरूपः । नन्विहेदानीं ग्राहकोऽस्मीति देशतः कालतश्च क्रमोऽस्ति । कथमैक्यमित्याशङ्क्याह—नहि क्रमोऽस्तीह देशकालाभ्याम् । अत्र प्रकाशे देशकालनिबन्धनः क्रमो भेदो नास्ति । तत्र हेतुः—चेत्ये मिथो भेदिनि स युक्तः । इदं नीलम् इदं पीतमिति भेदशालिनि चेत्ये नीलं पीतं च वेद्मीति स युक्तोऽनुवृत्तः । एतदेव हृदयङ्गमीकरोति—भेदाश्रयः खलु सः । चेत्यधर्मस्य भेदस्याश्रय एव ह्ययम् । भेदो हि नाम व्यावृत्तरूपता । अभेदोऽनुवृत्तरूपता । देशकालकृतो भेदश्चेत्य एवास्ति । तद्भेदाश्रयभूते चित्पदे भेदभ्रमस्तदुपाधिनिबन्धन एव ॥ १२ ॥

उक्तनयेन स्वरूपनिरूपणे न भेदः कश्चित् प्रकाशग्राहकयोः । अथ वेद्यमपि निरूप्यमाणं न प्रकाशाद् भिन्नमुपपद्यत इत्यभिप्रायेणाह—

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

स्वाङ्गे चिद्गगनात्मनि दुग्धोदधिनिभः स्वशक्तिलहरीणाम् ।
सम्भेदविभेदाभ्यां सृजति ध्वंसयति चैष जगत् ।।१३।।

एष एव प्रकाशः स्वाङ्गे स्वस्वरूपे भित्तिभूते चिद्गगनात्मनि अनवच्छिन्नचिन्मये स्वक्तीनां सम्भेदविभेदाभ्यां खेचर्यादिरूपाणां स्वरश्मीनां सम्भेदेन एकार्थग्रहणोन्मुखतया जगद् शिवादि सृजति अवभासयति विभेदेन, विज्ञातार्थवैमुख्येन ध्वंसयति संहरति च, यथोदधिर्लहरीणां सम्भेदेन तरङ्गबुद्बुदादीनि सृजति विभेदेन च संहरति। शिवादिवस्तुग्रहणादर्वाग्घि गगनकल्पा चिदेवास्ति। अवबिभासयिषायां तु खेचरीगोचर्यादिक्रमेण शक्तीनामेककार्यपरतया बहिर्मुखीभावलक्षणेन सम्भेदेन सृजति। विमृष्टे वस्तुनि ताभिरेव कारणलयक्रमेण प्रत्यग्भावरूपं चिद्भेदमुपागताभिः संहरति । ताः शक्तयस्तच्च जगत् प्रकाशबहिर्भूततया नास्तीति प्रतिपत्तिदार्ढ्यार्थ प्रकाशस्योदधित्वेन शक्तीनां लहरीत्वेनार्थसामर्थ्याच्च जगतस्तरङ्गादित्वेन रूपणं कृतम् । ततो जगत् तद्भेदस्तत्कारणभूताः शक्तयश्च विमृश्यमानाः प्रकाश एवेत्युपपादितं भवति ।। १३ ।।

यतो ग्राह्यादि न किञ्चित् पृथगस्ति वस्तु, सर्वात्मकतया प्रकाश एवास्ति, अतो ग्राह्यादिभेदभ्रमसंस्कारोन्मूलनाय चितिरेवोक्तयुक्तिप्रत्यभिज्ञाता दार्ढ्यप्रतिपत्त्या भावनीयेत्याह—

रूपादिपञ्चविषयात्मनि भोग्यहृषीकभोक्तृरूपेऽस्मिन् ।
जगति प्रसरदनन्तस्वशक्तिचक्रा चितिर्भाव्या ।। १४ ।।

यदेतद् भोग्यतत्साधनभोक्तृरूपं विश्वम्, तद् विचार्यमाणं रूपादिपञ्चविषयात्मकमेव भवति। तथा हि यदा रूपं भोग्यत्वेन विषयो भवति तदा तद्ग्रहणसाधकं चक्षुस्तदात्मकं ग्रहीता च ताद्रूप्यमापद्यते। इत्थं रसादिष्वपीति भोग्यहृषीकभोक्तृरूपेऽस्मिन् जगति प्रसरदनन्तस्वशक्तिचक्रा व्याप्रियमाणनानाविधरश्मिपुञ्जा चितिर्भावनीया। अनेन वस्तूनामानन्त्यमिति, आनन्त्याद् भावनं दुश्शकमिति, चिद्व्यतिरिक्तत्वमेवैषां चेति ये भ्रमास्ते निरस्ता ।।१४।।

इत्थं जगत् पञ्चधा संक्षिप्य चिदात्मकत्वं चावस्थाप्य पुनर्भावनालाघवाय त्रिधा संक्षिप्योपदिशति चिदात्मकत्वम्—

सोमरविवह्निलक्षणभोग्येन्द्रियभोक्तृभानपिण्डात्मा ।
बिन्दुर्विमर्शधर्मा षण्णामेकोऽध्वनां प्राणः ।। १५ ।।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

भोग्यं सोमलक्षणं पराग्रूपत्वात्। इन्द्रियाणि रविलक्षणानि पराक्प्रत्यगात्मकत्वात्। भोक्ता वह्निलक्षणः प्रत्यगेकस्वभावत्वात्। एतत्त्रितयात्मकमेव विश्वम्, न व्यतिरिक्तं किञ्चित्। एषां भोग्यादीनां यो भानपिण्डो भोग्यत्वादिविशेषविगलनेन सामान्यात्मकं भानं तद्विमर्शमयं स बिन्दुरेक एव षण्णामध्वनां प्राणः उदयविश्रान्तिहेतुत्वादात्मभूतः। सोमाद्यभिमानिनीनां तिसृणां देवतानां पारमार्थिकं स्वरूपं विचार्यमाणं भोग्यादित्रयात्मकमेव, न तु तल्लीलाविग्रहमण्डलादिस्वरूपम्, मण्डलादेर्वेद्यरूपत्वेनेन्द्रियत्वभोक्तृत्वानुपपत्तेः। भोग्यादेश्च भोग्यादिविशेषरूपेण प्रतीयमानस्य निर्विशेषप्रतीत्यात्मको बिन्दुः प्राण इति बिन्दोरेव विकृतिः षड्विधोऽयमध्वा ॥ १५ ॥

एतदेव विशदीकर्तुमाह—

व्यक्तं हि पदार्थात्मकमिदं जगन्नित्यमेव तल्लग्नम्।
शक्त्यात्मकमव्यक्तं तत्रैव पुनर्निमज्जति च ॥ १६ ॥

जगदेतद् द्विविधं स्थूलं सूक्ष्मं च। स्थूलं व्यक्तमुच्यते। सूक्ष्मं च शक्तिरुच्यते। तत्र पदार्थात्मकं यदेतत् व्यक्तं जगद् तद् नित्यमेव तल्लग्नम् उदयादिदशासु सर्वदा बिन्दुशक्तिलग्नमेव.। यत् पुनरव्यक्तं शक्त्यात्मकम्, तदपि तत्र निमज्जति। स्थूलतया सूक्ष्मतया वा प्रतीयमानं यद्यावदस्ति जगत्, तत् सर्वं प्रत्यवमर्शात्मकचितिबहिर्भावेन नोपपद्यते, जलबहिर्भावेन तरङ्गादिवदिति यावत् ॥ १६ ॥

अथ येयं चितिः, तामेव नानाविधसिद्ध्यपेक्षया विविधेति परिकल्प्य केचिदुपासते, न पुनरुपास्यं वस्त्वन्तरमस्तीत्यत आह—

षोडशधैनं नवधा षोढा भिन्दन्त्यथ त्रिधा च बुधाः।
आधारभेदलक्ष्यं बहुसिद्धिकरं च सेत्स्यन्तः ॥ १७ ॥

एनम् उपपादितरूपं बिन्दुम् आधारभेदलक्ष्यं षोडशाद्यात्मना भिन्नेष्वाधारेषु लक्ष्यत्वेन परिक्लृप्तम्। अत एव बहुसिद्धिकरम् आधारभेदोपाधिना सिद्धिवैविध्यावहं सेत्स्यन्तः साधकाः षोडशधा भिन्दन्ति आधारषोडशके षोडशात्मेति भावयन्ति, तथा नवधा षोढा त्रिधा च। अस्य षोडशादिरूपेण भेदेन आधाराणां षोडशादिभेदयोग उपाधिः, स्वरूपे भेदासम्भवात्। सेत्स्यन्त इति वदतोऽयमभिप्रायः—अलब्धैतत्स्वरूपप्रत्यभिज्ञानसिद्धयो मितयोगिन एवैवं

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

भेदेनोपासते, न तु सिद्धाः। ते तु चिदैक्यप्रतिपत्तिदार्ढ्यलक्षणजीवन्मुक्त्येकरसाश्रितिमैकात्म्येनैव सन्ततमुपासते ॥ १७ ॥

अथान्वयव्यतिरेकाभ्यामण्डस्य भावाभावरूपं बिन्दुं मार्ताण्डत्वेन निर्ब्रुवन् स त्वमेवेत्युपदिशति युगलकेन—

यस्य विमर्शस्य कणः पदमन्त्रार्णात्मकस्त्रिधा शब्दः।
पदतत्त्वकलात्मार्थो धर्मिण इत्थं प्रकाशस्य ॥१८॥
स्वेन विना मृतमण्डं स्वावेशबलेन जीवयन्नेकः।
मार्ताण्डः परमोऽसौ परनभसि न किं त्वया दृष्टः ॥१९॥

यस्य विमर्शस्येति वैयधिकरण्यम्। इत्थं प्रकाशस्य धर्मिणो धर्मित्वेनैवमुपपादितस्य प्रकाशस्य धर्मभूतो यो विमर्शोऽहन्तेति निरुक्तचरः, तस्य कणोंऽशमात्रमयं वर्णपदमन्त्रात्मकतया तत्त्वभुवनकलात्मकतया च प्रतिस्वं त्रैविध्यात् षडात्मकः शब्दार्थरूपोऽध्वा। असौ परमो मार्ताण्डो यस्य धर्मिण इति यः परामृष्टचरः प्रकाशः, असावेवापरस्य लौकिकस्य मार्ताण्डस्य प्रकाशकत्वात् परमो मार्ताण्डः। कथमस्य मार्ताण्डता ? स्वेन विना स्वस्य विश्वोन्मुखीभावमन्तरेण मृतमण्डं निमिषितमेव। तच्छिवादि विश्वं स्वावेशबलेन स्वस्यैतदुन्मुखीभावमहिम्ना यतो जीवयति उन्मेषयति। ईदृशोऽसौ मार्ताण्डः परनभसि भौतिकस्य नभसोऽवच्छेदकत्वात् परे हृदयाकाशे त्वया न किं दृष्टः। किमिति निषेधकाक्वा दर्शनाभावं कालत्रयेऽपि निरस्यति। योऽसौ प्रकाशरूपो मृतस्याण्डस्यानुप्राणनात् परमो मार्ताण्डः, स परनभोव्यपदेशयोगिन्यभिव्यक्तिस्थाने हृदये त्वया सर्वदा दृश्यत एव, तस्यादर्शने वस्त्वन्तरदर्शनासम्भवात्। अतो हृदयावच्छिन्नतयैव प्रतीयमानो योऽयमनवच्छिन्नस्ते प्रकाशः, स एव त्वमिति प्रत्यभिज्ञापितमिति ॥ १८–१९ ॥

प्रत्यभिज्ञातस्य विश्वोत्पादकत्वं विविच्य दर्शयति—

चिद्गगनक्षीरोदं स्वयमिच्छामन्दरेण संक्षोभ्य।
तच्छक्तिवीचिभिरसावुत्थापयतीन्दुमण्डाख्यम् ॥२०॥

अनवच्छिन्नचिन्मयमब्धिं स्वयं स्वातन्त्र्येणैव इच्छामन्दरेण संक्षोभ्य अवभासयिषालक्षणेन गिरिणा कार्योन्मुखतां नीत्वा तच्छक्तिवीचिभिः खेचर्यादि-

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

रूपस्वशक्तिरूपैरेवौर्मिभिरण्डाख्यमिन्दुमुत्थापयति स्वेच्छावशतः स्वाभिन्नमेव विश्वं स्वभित्तावेव त्वमिति प्रत्यभिज्ञापितः प्रकाशोऽवभासयतीत्यर्थः ॥२०॥

अथाण्डस्यावान्तरकक्ष्या विभागेनोपन्यस्य स्वात्मभित्तिलग्नतां स्वानुभवसाक्षिकतया दर्शयति—

शक्तिर्माया प्रकृतिः पृथ्वीति चतुर्विभागमण्डं यत् ।
यश्च विभागोऽस्य पुनर्बहुधा सर्वं स्थितं मयि तत् ॥२१॥

शक्तिर्बिन्दुः । तेन कारणेन शुद्धाध्वलक्षणं कार्यमुपलक्ष्यते, मायया मिश्राध्वात्मकम्, प्रकृत्या शुद्धेतरात्मकम्, पृथिव्या स्थूलभोग्यभोगायतनादिः, इति चतुर्विभागं यदण्डं यश्चास्य विभागो भुवनादिरूपः, तत् सर्वं मयि स्थितं परस्मिन्नेव प्रकाशे वर्तते । स्थितमिति भूतार्थतायामविवक्षा, स्थितेस्त्रैकालिकत्वाद् इति शिवम् ॥ २१ ॥

इति विरूपाक्षपञ्चाशिकायां विवृतिसमेतायां प्रकाशैकात्म्यविवेचनस्कन्धो द्वितीयः ॥

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

अथ तृतीयः स्कन्धः

इयता सन्दर्भेण विश्वात्मकत्वमात्मनो युक्त्यनुभवोपपन्नतया प्रतिपादितम् । अथ निश्चितस्य वैश्वात्म्यस्यासम्भावनया विपरीतभावनया वोपरागो मा भूदिति तृतीयस्कन्ध आरभ्यते । तत्र मयि स्थितमिति कथनेनाधाराधेयभावलक्षणेन योऽयं भेदः प्रतीतः, तं व्यतीहारेण निरस्यति—

अहमेकोऽनस्तमितप्रकाशरूपोऽस्मि तेजसां तमसाम् ।

अन्तः स्थितो ममान्तस्तेजांसि तमांसि चैकस्य ।।२२।।

अनस्तमितप्रकाशरूपो नित्योदितप्रकाशमयः एकोऽद्वितीयः तेजसां तेजस्त्वेनाभिमतानां बुद्ध्यादिकरणानामर्कादिज्योतिषां च अन्तः स्थितोऽस्मि प्रकाशमानत्वेन तेषामन्तरात्मतयाऽहमस्मि । तथा तमस्त्वेन प्रकाशमानत्वात् तमसां बिन्दुमायादीनां चान्तः स्थितोऽस्मि । प्रकाशात्मनि मय्यन्तरवस्थिते तेजस्तेजस्तया तमस्तमस्तया च चकास्यादित्याशयः । तानि तेजांसि तमांसि च ममान्तः स्थितानि प्रकाशात्मकोऽहमेक एव भावाभावात्मकजगद्रूपतया परिस्फुरामि । अतो न भेदस्याशङ्कितस्यावकाशः कश्चिदिति भावः ।।२२।।

इत्थं ग्राहकसामान्यापेक्षया च चितेरेवाभेदमुपपाद्य 'स त्वम् अहम्' इति त्रिस्कन्धकस्याभासस्य भेदाभावं विवेचयितुमाह—

प्रथमो मध्यम उत्तम इति पुरुषा भेदिनस्त्रयोऽपि मिथः ।

मत्तस्तु महापुरुषात् प्रत्यवमर्शात्मनो न बहिः ।।२३।।

'सः' 'त्वम्' 'अहम्' इति विजातीयव्यपदेशयोगाद् मिथो भेदिनः परस्परव्यावृत्तरूपा य एते प्रथमो मध्यम उत्तम इति त्रयः पुरुषाः, सर्वं एवैते प्रत्यवमर्शात्मनोऽनुवृत्ततया महापुरुषान्मत्तो न बहिः मद्व्यतिरिक्तं न तत्त्वान्तरम् । य एते प्रथमादयः पुरुषास्ते मिथो व्यावृत्तरूपा अपि प्रत्यवमर्शात्मकमदायत्तसर्गापवर्गत्वाद् मद्भित्तौ मदेकात्मतया प्रतीयमानत्वाच्च न मद्बहिः ।।२३।।

ननु प्रथममध्यमपुरुषप्रतियोगित्वेन अहमित्यवच्छिद्यसे, अनवच्छिन्नप्रकाशात्मकश्चासि । इत्थं भेदे कथमैकात्म्यमित्यत आह—

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

युष्मच्छेषापोहवदहमिति यद्भाति भिन्नमिह रूपम् ।
तदिदं भागविभेदो न त्वहमेकोऽस्मि यन्नित्यम् ॥२४॥

युष्मदपोहवच्छेषापोहवच्च मध्यमप्रथमपुरुषाभ्यां व्यावृत्तमित्यर्थः। अत एव भिन्नं तदुभयप्रतियोगि यदेतद् अहमिति रूपं भाति, तदिदं भागविभेदः स इतिवत् त्वमितिवच्च ममांशविशेषः कश्चित् न त्वहं न तु मे पारमार्थिकं स्वरूपम् । तत्र हेतुः—एकोऽस्मि यन्नित्यं नित्यम् अनवच्छिन्नप्रकाशैकघनोऽस्मि यतः । प्रकाशैकात्मकत्वमनवच्छिन्नत्वात् सदातनं सत् तात्त्विकं मे स्वरूपम् । अहमिति तु रूपमवच्छिन्नत्वादागन्तुकं सत् स इत्यादिवदंशविशेष एवेति भावः ॥ २४ ॥

यथा चैवं ग्राहको विशेषतो विविच्यमानोऽपि ममैवांशः, तथा ग्राह्यमपि विशेषतो विविच्यमानममैव शक्तिप्रसर इत्याह—

द्यावापृथिवीदेशः कालोऽह्नो रात्रिरिति ययोः प्रसरः ।
ते भानतिरोधिकृती शक्ती मे भाववृन्दस्य ॥ २५ ॥

द्यौः पृथिवी चेति योऽयं देशः, यश्चाहो रात्रिश्चेति कालः, तदेतत् क्रोडीकृतग्राह्यान्तरं ग्राह्यद्वयं ययोरेव प्रसरः, ते भाववृन्दस्य भानतिरोधाने ममैव शक्ती । शक्तिसम्भेद एव खलु मे पदार्थानां भानम्, विभेद एव तिरोधानमित्युक्तं प्राक् "स्वशक्तिलहरीणाम् । सम्भेदविभेदाभ्यां सृजति ध्वंसयति च" (१३ श्लो०) इति । इत्थं च भावानां भानतिरोधानरूपे ये एते शक्ती, तयोरेव प्रसरभूतोऽयं देशः कालश्च भावप्रतियोगितया अभावप्रतियोगितया च स्थितः : स मद्बहिर्भावेन नास्तीत्यर्थः ॥ २५ ॥

भानतिरोधानाभ्यां यत् कृत्यान्तरमुपलक्षितम्, तद् विशेषतो विविच्य दर्शयति—

धूमावती तिरोधौ पुष्टौ ह्लादा च भास्वती भाने ।
क्षोभे च परिस्पन्दा व्याप्तौ विभ्वीति शक्तयः पञ्च ॥ २७ ॥

धूमावतीति मे शक्तिः प्रथमे, पुष्टौ आप्यायने ह्लादाख्या, अवभासने भास्वती, क्षोभे परिस्पन्दने स्पन्दाख्या, व्याप्तौ विभ्वीति पञ्च मे शक्तयः ॥ २६ ॥

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

शक्तीनामप्रत्यक्षत्वात् कार्यमुखेनैव स्वरूपनिश्चय इत्यभिप्रेत्य कार्यमुखेनैव ता निरूपयति—

धूमावती पृथिव्यां ह्लादाप्सु शुचौ तु भास्वती प्रथते ।
वायौ स्पन्दा विभ्वी नभसि व्याप्तं जगत् ताभिः ।।२७।।

इत्थं च सति जगत् षडध्वात्मकं विश्वमेताभिर्व्याप्तं ममैव धूमावत्यादिभिः पञ्चभिः शक्तिभिः क्रोडीकृतम् । अनेन सर्वदा पञ्चकृत्यकारित्वं चिदात्मनो दर्शितमिति मन्तव्यम् । तथा हि—अवभासनं सृष्टिः, स्थापनं क्षोभः संहरणं तिरोधानं स्वशब्देनैवोक्तम् । व्याप्तिरनुग्रहः ।। २७ ।।

एवमाभासनादिनिष्पादितं जगद्विमर्शशक्तिस्पर्शमात्रेण प्रकाशैकार्णवतामापद्यत इत्याह—'निजधर्मिणम्' इत्यादिभिः 'कात्स्न्र्येनाविष्टमिव' इत्यन्तैश्चतुर्भिः श्लोकैः—

निजधर्मिणं प्रकाशं स्वरूपयन्ती प्रकाश्यवर्गस्य ।
शक्तिर्विमर्शरूपा शरीरयत्यखिलमस्य मम ।। २८ ।।

विमर्शरूपा मम शक्तिः प्रत्यवमर्शरूपिणीयं चितिः, अखिलं मम शरीरयति शिवादिधरण्यन्तं विश्वं मदेकात्मतामापादयति । कीदृशी ? निजधर्मिणं धर्मभूतायाः स्वस्योदयलयादिभित्तिभूतमाश्रयं प्रकाशम् उपलब्ध्येकरूपं चैतन्यं प्रकाश्यवर्गस्य स्वरूपयन्ती ज्ञेयजातस्य तात्त्विकस्वरूपत्वेन व्यवस्थापयन्ती सर्वस्यैवास्य वेद्यजातस्य पर्यन्ते निर्बाधमवशिष्यमाणं स्वरूपं प्रकाश एवेति स्वानुभवसाक्षिकमुपदर्शयन्ती ममेयं विमर्शरूपा चितिशक्तिरखिलमेतच्छिवादिकमध्वानं मदीयमेवापादयति ।। २८ ।।

तथा हि—

ज्ञातृज्ञानज्ञेयात्मकमखिलं मद्विमर्शवह्निशिखा ।
दग्ध्वा प्रकाशरूपं शुभ्रं भस्मावशेषयति ।। २९ ।।

मद्विमर्शवह्निशिखा विमर्शोऽयं सर्वात्मव्यापकेन रूपेण सर्वाध्वव्यापकज्वालात्वेन प्रतीयते । ममायमीदृशो विमर्शो ज्ञातृज्ञानज्ञेयात्मकम् अखिलं दग्ध्वा ज्ञातृत्वादिविशेषांशांस्तत्क्षणमेवोपमृद्य प्रकाशरूपं प्रकाशसामान्यात्मकं शुभ्रम् अकृत्रिमानन्दघनत्वात् क्लेशादिभिरकलुषितं भस्म सन्मात्रां विभूतिम् अवशेषयति तदेकार्णवीकरोति ।। २९ ।।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

ननु विमर्शसमनन्तरमेव वेद्यांशे भेदलय इति युक्तम् । ग्राहकांशे तु विमर्शनक्रियाकर्तुर्भेदेनावस्थानान्न कदाचिद् भेदकलानिवृत्तिरित्यत आह—

अकठोरमद्विमर्शज्वालाग्रस्ते तिरोधिमद् भानम् ।
अङ्गारवदिव भस्म प्रथते तत्राणुवर्गस्य ॥ ३० ॥

तत्र ज्ञातृज्ञानाद्यात्मनि प्रक्रान्तेऽखिले अकठोरमद्विमर्शज्वालाग्रस्ते अहं विमृष्टवानित्यहमंशे भेदावशेषणाद् अनतिप्रकाशितदाहशक्तिना मद्विमर्शेनाक्रान्ते सति अणुवर्गस्य भानं ग्राहकवर्गस्यावशिष्टा अहमिति प्रतीतिः । कीदृक् ? तिरोधिमद् उपसंहृतवेद्यतया वेद्यांशाविनाभूतप्रसरेण भेदेनाच्छादितम् अङ्गारवद् भस्मेव प्रथते अन्तस्थितसूक्ष्माङ्गारभसितराशिकल्पतया प्रतीयते ॥३०॥

यदि स एव दाहस्तीव्रस्तदा पश्येत्याह—

कार्त्स्न्येनाविष्टमिवारण्यपुराद्यग्निना मयापि जगत् ।
चित्रमवधूय भेदं ननु गृह्णात्येकरूपत्वम् ॥३१॥

मया सर्वभेदोपसंहरणैकस्वभावविमर्शात्मना कार्त्स्न्येनाविष्टं निश्शेषतो विमृष्टं जगद् एतच्छिवादिभूम्यन्तम् अग्निना कार्त्स्न्येनाविष्टमरण्यपुरादिकमिव चित्रं नानाविधं भेदम् अवान्तरविशेषम् अवधूय स्वात्मनि निमग्नं कृत्वा एकरूपत्वं गृह्णाति प्रकाशैकघनीभवति । नन्वित्यनेनास्य सर्वानुभवसिद्धतामाविष्करोति ॥३१॥

कार्त्स्न्येन विमर्शाविष्टे जगति सर्वभेदभ्रमोपशमो भवतीत्युक्तम् । तमेव कार्त्स्न्येनावेशप्रकारं विविच्य दर्शयति––

अन्तर्मुखं स्वरूपं ज्ञेयस्य ज्ञानमस्य तु ज्ञाता ।
ज्ञानस्य ज्ञातृतनोश्चितिरेकाऽस्यास्त्वहं नान्यः ॥ ३२ ॥

इह हि भावानां द्वे स्वरूपे भवतो बहिर्मुखमन्तर्मुखं च । तत्राद्यं स्थूलं व्यावृत्तमपारमार्थिकं च । यत् पुनरन्तर्मुखं तत् सूक्ष्ममनुवृत्तरूपं पारमार्थिकं च । इत्थं स्थिते ज्ञेयस्य घटादेर्यद् अन्तर्मुखं पारमार्थिकं स्वरूपं तद् घट इति ज्ञानमेव, बाह्याकारस्य तत एवोदयात्, तद्भित्तिलग्नत्वेनैवावस्थानात्, तत्रैव च लयात्, अस्य तु ज्ञाता घटज्ञानस्यापि तदुदयस्थितिनिदानभूतो ग्राहक एवाभिमन्तृतारूपोऽन्तर्मुखं रूपम् । ज्ञानस्य ज्ञातृतनोश्चितिरेका उक्तनयेन

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

ज्ञेयाविभेदिनो ज्ञातृतामापन्नस्य प्रत्यवमर्शरूपा चितिरेवान्तरतमं तत्त्वम् । अस्यास्त्वहं नान्यः चितेरपि प्रत्यवमर्शलक्षणायाः प्रत्यवमर्शांशनिमज्जने निष्कृष्टप्रकाशात्मकः "अहमिति स एक उक्तः" (१० श्लो०) इति निरूपितचरोऽहमेव काष्ठाप्राप्तं तत्त्वम्, नान्यः कश्चिन्मद्व्यतिरिक्तोऽर्थः । इन्द्रियार्थसम्पातसमनन्तरमयं घट इति योऽयं विकल्प उत्पद्यते, तदुत्पत्तेरर्वाग् घटस्य घटत्वेन वा वस्त्वन्तरत्वेन वा व्यपदेष्टुमशक्यत्वाद् ज्ञेयस्यान्तर्मुखं स्वरूपं ज्ञानमेव । ज्ञानस्यापि ज्ञात्रेकायत्तोदयलयस्य ज्ञातैवान्तरतमं रूपम्, ज्ञातुरप्यनेनैव नयेन चितिरेव । चितेरप्यहमेवैकोऽनुपचरितं तत्त्वम् । इत्थं कार्त्स्न्येन विमर्शाग्न्यावेशे निर्विवादमेकस्वरूपत्वं ग्राह्यादीनां प्रकाशेन सहेत्युपदिष्टं भवति ।। ३२ ।।

इत्थं ज्ञेयादित्रयस्य प्रकाशापेक्षया भेदाभावमुपपाद्य मिथोऽपि न भेदः कश्चिदिति विवेचयति—

अक्रमता मे क्रमिकं ज्ञात्राद्यं सक्रमाक्रमा तु चितिः ।
मद्वद् ज्ञाता ज्ञानं शक्तिरिव त्रितयवद् ज्ञेयम् ।। ३३ ।।

अक्रमता मे निकृष्टप्रकाशपरमार्थस्य मम चित्यादिचतुष्टयापेक्षया स्वापेक्षया चाक्रमत्वमेव, सर्वानुस्यूतरूपतया व्यावृत्तिलवस्याप्यसम्भवात् । क्रमिकं ज्ञात्राद्यं ज्ञाता ज्ञानं ज्ञेयमिति मिथो व्यावृत्तरूपतया प्रतीतेस्त्रितयमेतत्क्रमिकम् । चितिस्तु सक्रमाऽक्रमा, ज्ञात्राद्यपेक्षया सक्रमा, मदपेक्षया त्वक्रमेति द्विरूपा । इति प्रबुद्धस्य ते प्रतीतिप्रकाराः । वस्तुतस्तु मद्वद् ज्ञाता यथा चित्यादिचतुष्टयानुवृत्तेर्ममाक्रमत्वम्, तथा ज्ञानज्ञेयानुवृत्तेस्तदुभयापेक्षया मदपेक्षया च ज्ञातुरक्रमत्वम् । ज्ञानं शक्तिरिव यथा चितिज्ञात्राद्यपेक्षया सक्रमा मदपेक्षया त्वक्रमेति स्थितम्, तथा ज्ञानमपि ज्ञेयापेक्षया सक्रमं मदपेक्षया त्वक्रममिति शक्तिरिव । त्रितयवद् ज्ञेयं ज्ञाताहं चेति, ज्ञानं शक्तिश्चेति, ज्ञेयान्तरं चेति त्रितयम् ज्ञेयम् एतत्त्रितयवत् । यथा ज्ञाताहं चेत्यक्रमौ तद्वदावामप्यपेक्ष्य ज्ञेयमक्रमम् । अनयैव रीत्या शक्तिज्ञानापेक्षया सक्रमाक्रमम् । चितिस्तूभयापेक्षयोभयरूपेति यो भ्रमः स निरस्तः, यतो ज्ञाताहं चेति, ज्ञानं शक्तिश्चेति, ज्ञेयं त्रितयं चेति न तत्त्वान्तरम् । अत्रैतदाकूतम्—इदं वनमित्यादौ तर्वपेक्षया वनस्य वनापेक्षया तरूणां चानुवृत्तिरेवेति सर्वत्राभेद एव । यदा तु चूतश्चम्पक इत्यादिप्रतीतिः, तदा वनापेक्षया चूतचम्पकयोरनुवृत्तिरिति न भेदः, परम्परा-

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

पेक्षया तु व्यावृत्तिरेवेति भेदः। इत्थं प्रकृतेऽपि प्रकाशापेक्षया समष्टिव्यष्टयोश्च न भेदः, परस्परापेक्षया तु यथायोग्यमवस्थानम्। अतः सर्वत्रानुवृत्तक्रमत्वम्, सक्रमत्वं द्वैरूप्यं च व्यावृत्तमिति प्रकाशैकात्म्यमेव पारमार्थिकम्, भेदस्त्वविमर्शस्यैव विलसितमिति ॥ ३३ ॥

एतदेव विविच्य दर्शयति—

पीतादिषु हि न नीलं तेष्वत्र च भाति चाक्षुषं ज्ञानम्।
न श्रौत्रादिषु तदपि ज्ञाता तेष्वत्र चानुगतः ॥३४॥

यदुक्तं ज्ञेयं ज्ञेयान्तरापेक्षया क्रमिकमेवेति, तदुदाहर्तुमाह—पीतादिषु हि न नीलं यदा हि पीतमिति प्रतिपत्तिः, न तदा नीलम्। एवं मिथो व्यावृत्तरूपत्वाद् ज्ञेयं ज्ञेयान्तरापेक्षया क्रमिकमेव। यच्चोक्तं ज्ञानशक्तिरिव सक्रमाक्रममिति, तदुपदर्शयति—तेष्वत्र च भाति चाक्षुषं ज्ञानं तेषु पीतादिष्वत्र नीले च, न श्रौत्रादिषु। यदपि श्रौत्रं श्रावणं ज्ञानं, तदपि चाक्षुषम्। एवं सक्रमाक्रमत्वाद् ज्ञानं शक्तिरिवेति युक्तम्। यच्चोक्तं मद्वद् ज्ञातेति, तदर्थमाह—ज्ञाता तेष्वत्र चानुगतः। तेषु पीतनीलादिषु चाक्षुषेषु। अत्र श्रौत्रादिके। अतः सर्वत्रानुवृत्तरूपत्वान्मद्वद् ज्ञातेत्यपि सिद्धम् ॥ ३४ ॥

यत इत्थमर्थस्वरूपनिर्णयः, ततः—

ज्ञातारं मां ज्ञानं शक्तिं त्रितयात्मकं पुनर्ज्ञेयम्।
अविकल्पं भावयतः सोऽहं सा तत् त्रयं तच्च ॥३५॥

ज्ञातारं माविकल्पं भावयतः सोऽहम् उक्तेन नयेन विकल्पहेतोरसम्भवाद् ज्ञातृप्रकाशावैकात्म्येन भेदसंस्कारोपशमादन्तर्दृढप्रतिपत्त्या परिशीलयतस्तद्भेदभ्रमापगमलक्षणा सिद्धिर्भवति। तथा ज्ञानं शक्तिम् अविकल्पं भावयतः सा तद् उक्तनयेनैव शक्तिज्ञानयोरभेदभावनादाढर्च्येन तदभेदप्रत्यभिज्ञानरूपा सिद्धिः। तथा च त्रितयात्मकं पुनर्ज्ञेयं तथा भावयतः त्रयं तच्च। वेद्यस्य प्रकाशज्ञातृभ्यां शक्तिज्ञानाभ्यां ज्ञेयान्तरेण सह (च) स्थितो योऽयं दुरुत्तरो भेदभ्रमः, तस्य समूलोन्मूलनरूपा सिद्धिः सद्य एव। अत्र 'सोऽहं' 'सा तत्' 'त्रयं तच्च' इत्येषु त्रिष्वपि वाक्येषु भवतीत्यादिका क्रिया नोपात्ता, अपि तु तादात्म्यस्य स्वरूपमेव निवेदितम्। अतो नैतदेषामैकात्म्यं साध्यम् अपि तु नित्यसिद्धमेवोक्ताभिर्युक्तिभिः प्रत्यभिज्ञायत इत्यनुसंहितमाचार्येण ॥३५॥

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

तत्र ज्ञातुः क्रमिकत्वस्य नित्यसोपाधिकत्वात् प्रकाशतादात्म्यं नित्यसिद्ध-मित्युपदिशति—

सन्तानान्तरवाहे ज्ञाता व्यावृत्तभासनः क्रमिकः ।

जीवाख्यो मद्योगान्मद्वत् स्यादक्रमाभासः ।।३६।।

सन्तानान्तरवाहे नीलसंकल्पविकल्पाद्येकसन्तानसमनन्तरं पीतसङ्कल्प-विकल्पादौ सन्ताने वहति सति व्यावृत्तभासनो ज्ञाता क्रमिकः 'नीलस्याव-भासकोऽस्मि' 'पीतस्यावभासकोऽस्मि' इति परस्परपरिहाररूपेणावस्थित-ग्रहणत्वात् ग्राहकः क्रमवान् । यदा चेत्थं क्रमिकता, तदैव चासौ जीवाख्यः, वस्तुतः शिवस्य सतोऽस्य जीव इति संज्ञा तत्कालमात्रमेव । मद्योगात् तु यदे-तन्मयि क्रमिकत्वं तद् वेद्योपाधिकमेव । वस्तुतस्तु नीलस्य पीतस्य चावभास-कत्वादनुवृत्तः सन् सर्वदा सर्वानुवृत्तप्रकाशात्मक एवास्मीत्येवंरूपत्वान्मम परप्रकाशस्य योगाद्वस्तुविमर्शलक्षणात् संस्पर्शात् मद्वत् स्यादक्रमाभासः । यथा प्रकाशो नित्यमक्रममेव भासते, तथा ग्राहकोऽपि । तस्यामेव पीतादि-ग्रहणदशायां प्रकाशैकात्म्येनाक्रममेवावभासते । अनेन प्रबुद्धस्य विश्वप्रति-योगित्वं यदा तदैव शिवत्वम् यदा तु प्रतिनियतार्थप्रतियोगित्वं तदा ग्राह-कत्वमिति द्वैरूप्यानतिक्रमाद् जीवत्वसंस्कारः सदानुवर्तत एवेति, योऽयं भ्रमः स्थितः, स दूरतरमुत्सारित उक्तनयेन पीतादिग्रहणदशायामप्यक्रमपरिपूर्णैक-घनप्रकाशात्मकशङ्करस्वभावत्वादित्युपदिष्टं भवति ।।३६।।

अथ वेत्त्रतिरिक्ततया वेद्यतिति वेदनमिति च कक्ष्याद्वयकल्पनं यावती-मेवास्ति विमर्शवन्ध्यां कालकलां तावदेवास्ति वेद्यं वेदनं च । विमर्शे तु कृते नोभयमप्यस्ति प्रकाशबहिर्भावेनेत्युपदिशति—

वेद्यं स्वक्रमविद्धां वित्तिमनुप्रविशदङ्गविषयाद्यम् ।

वेदितरि वित्तिमुखतो लीनं तल्लक्षणं भवति ।।३७।।

अङ्गविषयाद्यं भोगायतनभोग्याद्यात्मकं देहपीतादि वेद्यम् । स्वक्रमविद्धां वित्तिमनुप्रविशद् 'अर्थेनैव विशेषोऽस्ति निराकारतया धियाम्" इति नयेन योऽर्थ उपाधिस्ताद्रूप्यमापद्यमानं वेदनमनुप्रविशति, ग्रहणकौतुकोपरमा-दिन्द्रियव्यापारनिवृत्तौ पीतज्ञानं मम जातमिति वेदनात्मतामापद्यते । अथ वेदितरि वित्तिमुखतो लीनं वित्तिमेव मुखीकृत्य वित्तिलयसमये वेदितरि

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

लीयते। तथालीनं सत् तल्लक्षणं भवति ऊर्मौ लीनम् ऊर्मिलयमुखेनाब्धौ बुद्बुदादीव तदेकात्मतां वस्तुतः सतीमेवावलम्बते। इह प्रकाशस्यैव शिवादिवस्तुतदुदयस्थित्यादितद्भेदादिरूपप्रपञ्चात्मना स्फुरणात् प्रकाशबहिर्भूतं न किञ्चिदुपलभ्यते, न चोपपद्यते, नाप्युपयुज्यते। अतोवेत्तृवेदनादिविकल्पानामूर्म्यादिवत् तदभिन्नतयैव यदुन्मज्जनं तदेव वेत्त्रादिवस्तु सत्ता तदुदयादिस्तद्भेदश्च। अस्यार्थस्यैवंविमर्श एव शिवत्वम्। अमन्दो विमर्शः प्रबुद्धता। अविमर्शस्तु पशुत्वमित्युपदेशनिष्कर्षः ॥३७॥

अथ यथा वेदकस्य 'सः' 'त्वम्' इत्यादिप्रत्ययविषयतया भेदमाशङ्क्य परिहृतः "प्रथमो मध्यमः" (२३ श्लो०) इत्यादिना, तथैव वेद्यस्यापि स्मृत्यादिप्रत्ययविषयतया भेदानाशङ्क्य परिहरति--

स्मृत्यनुभवानुसंहितिवशतस्तज्जगदिदं तथा तदिदम्।
स्वैर्यहमाभासयिता भिन्नं चापोहनेन मिथः ॥३८॥

स्मृतिवशात् तदिति, अनुभववशाद् इदमिति, अनुसंहितिः प्रत्यभिज्ञा, तद्वशात् तदिदमिति च शिवादि जगत् स्वैर्यहमाभासयिता स्वतन्त्रोऽहं सृजामि। कथं भिन्नं चापोहनेन मिथः मिथो व्यावर्तनेन भिन्नं चकारादभिन्नं च। सोऽयं स्वैरिण्णो महिमा। मिथो व्यावर्तनस्यान्यान्यनिमेषरूपत्वाद् भिन्नतया सृजामि, उक्तयुक्तिभिः प्रत्यवमर्शने कृते व्यावृत्त्यपगमादभिन्नतया च, विमर्शस्य व्यावृत्त्यात्मकनानानिमेषग्रसनैकस्वभावत्वात्। विमर्शशैथिल्ये हि 'तद्' 'एतद्' इत्यादि व्यावृत्तरूपतोदयः, कृते तु विमर्शे तदादिविशेषविगलनात् प्रकाशैकसाम्राज्यमिति भावः ॥३८॥

उक्तरीत्या प्रकाशमेव भित्तित्वेनाश्रित्य तदभिन्नतयैव तदेतदादिभेदानामुदयलयाद्यनभ्युपगच्छतो भेदवादिनो बाधकं तर्कमाह—

स्मृतिरनुभवस्य भानं सोऽर्थस्य द्वौ सहानुसन्धानम्।
त्रितयमपि मां विनैकं क्रमरहितं न घटते विदुषाम् ॥३९॥

अनुभवस्य भानम् अयं नील इत्याद्यर्थविषयस्य ज्ञानस्य यदेतद् भानं, तन्नीलाद्यर्थव्यपेक्षया स्मृतिः। सोऽर्थस्य स इति स्मृतिमूलभूतानुभवः परामृश्यते। अर्थस्येत्यत्र भानमित्युनुकृष्यते। अर्थस्य भानं त्वनुभव इत्यर्थः। द्वौ सह तावेतौ स्मृत्यनुभवौ द्वावपि दृष्टचरार्थप्रतिसन्धानवेलायामेकप्रत्ययतापन्नौ

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

अनुसन्धानं प्रत्यभिज्ञोच्यते। तदेतद् क्रमिकं त्रितयमपि क्रमरहितं मामेकं विना न घटते सर्वप्रमितिभाजनमत एवानुस्यूतं प्रकाशमेकमन्तरेण नोपपद्यते। यद्यक्रमिकः सर्वानुसन्धाता प्रकाशो नाभ्युपगम्येत, तदा क्रमिकाभिमतं तदेतदित्याद्यपि निर्भित्तिकं चित्रमापद्येतेत्यर्थः ॥३९॥

यत इत्थम्, अतः—

अस्तमितमर्थजातं भात्वा भिन्नमिव रुद्धतद्भानम्।
मद्भानैकात्म्येन स्रोत इवाब्धौ स्थितं हि मयि ॥४०॥

अर्थजातं भिन्नमिव भात्वा वस्तुतो भेदासम्भवाद् इदं नीलज्ञानस्याप्युपसमावसरे नीलमस्तमिति च भानं रुणद्धि प्रकाशस्यान्तरवमज्जयति। तथाभूतं तु मद्भानैकात्म्येन वर्तते। अथार्थजातमपि प्रकाशात्मकमेव प्रान्ते भवतीति भावः ॥४॥

इति श्रीविरूपाक्षपञ्चाशिकायां विवृतिसमेतायां
विमर्शस्कन्धस्तृतीयः ॥

●

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

अथ चतुर्थः स्कन्धः

अथ चतुर्थो विभूतिस्कन्ध आरम्भणीयः। तत्र विभूत्याविर्भावाङ्गत्वेनाप्रबुद्धादीनां प्रतीतिप्रकारः प्रथमं निरूप्यते 'मत्स्थमपि' इत्यादि श्लोकचतुष्केण। तत्राप्रबुद्धः, प्रबुद्धकल्पः, प्रबुद्धः, सुप्रबुद्धकल्पः, सुप्रबुद्ध इति पञ्च प्रमातारः। तेषु यस्य यादृशी प्रतीतिः, तां विभज्य दर्शयति—

मत्स्थमपि भुवनवृन्दं बहिरिव मद् भाति मायया भविनाम्।
अथ विद्यया भवेद् भवपदिनामन्तर्बहिष्ट्वेन ॥४१॥

मत्स्थमपि उक्तन्यायेन प्रकाशात्मतया मद्भित्तिलग्नमपि भुवनवृन्दम् अनाश्रितादिकालाग्न्यन्तं भुवनमण्डलं भविनां बहिरिव मद् भाति। भवो भेदप्रतिपत्तिः, तद्वतां सांख्यादिसिद्धान्तानाम्। तत्र हेतुः मायया अभिन्ने वस्तुनि भिन्नप्रतीत्यात्मिकया मायया। भवपदिनां तु येषां भवो नास्ति तत्संस्काररूपं तु भवास्पदमस्ति ते भवपदिनो विद्याप्रमातारः सम्प्रज्ञातसमाधेरर्वाक्पर्वप्रविष्टाश्च, तेषाम् अन्तर्बहिष्ट्वेन भवेद् अन्तःसङ्कल्पादिरूपतया भिन्नमिवाभाति। तत्र हेतुः—विद्ययेति शुद्धया ॥ ४१ ॥

अथानयोर्यस्य बहिर्भाति सोऽत्र संविदुपदेशे योग्यः पशुरित्याह—

ग्राहकमेवं त्वजडं जडमन्यद् ग्राह्यमस्य यो मनुते।
मायाविमोहितात्मा बोध्यः सोऽणुर्भवी सद्भिः ॥ ४२ ॥

ग्राहकम् अजडं चिदात्मकम्, ग्राह्यं जडमचिदात्मकम्, अन्यच्च मनुते यः स मायाविमोहितात्मा येयं ग्राह्याभिमते वस्तुनि जडत्वेनान्यत्वेन च प्रतीतिः, सैव माया, तया विमोहितात्मा अप्रत्यभिज्ञातस्वरूपः अत एव भवी सद्भिर्बोध्योऽणुः प्रत्यभिज्ञातस्वरूपैर्गुरुभिरुपदेश्यः पशुः। यदागमः—

अन्यतन्त्रेषु ये मुक्ता धर्माधर्मक्षयान्नराः।
तेऽत्र रुद्राणवः प्रोक्ताः कालकर्मविवर्जिताः ॥ इति।

अनेन तार्किकमीमांसकादीनामप्रत्यभिज्ञातचेत्यविविक्तचित्स्वरूपाणां

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

सच्छास्त्रोपदेशे नैवाधिकार इत्युपदिष्टं भवति। तेषु संवित्सिद्धान्तप्रकाशने प्रत्यवायश्रुतिश्च—

अन्यायात् कथनं कुर्वन्नकाले मृत्युमाप्नुयाद् ॥ इति।

अतः पशुषु संवित्सिद्धान्तार्थो गोपनीय इति शिवाज्ञा सर्वथा नोल्लङ्घनीयैव ॥ ४२ ॥

एवमप्रबुद्धस्य प्रबुद्धकल्पस्य च प्रतीतिप्रकारो विविच्य दर्शितः। यस्तु प्रबुद्धः, तस्येदानीं विवेचयति—

जडतात्मिकामिदन्तामथाजडत्वात्मिकामहन्तां च।
सामानाधिकरण्यादिदमहमिति बुध्यते द्विपदी ॥ ४३ ॥

द्विपदी भवोद्भवोभयसंस्कारवशात् भेदाभेददशावस्थितो जडतात्मिकामिदन्ताम् इदमिति प्रतीयमानं जडं वस्तु अथाजडत्वात्मिकामहन्तां च अजडमिति प्रतीयमानमहंवस्तु च सामानाधिकरण्याद् अभेदारोपणेन भेदांशमवमज्जयन् इदमहमिति बुध्यते स्वशरीरकल्पतया द्वैरूप्येण पश्यति। सेयमीश्वरदशा ॥ ४३ ॥

अथ यः सुप्रबुद्धकल्पो यश्च सुप्रबुद्धः, तयोः प्रतीतिप्रकारं विवेचयति—

उद्भविनां केवलया निमग्नमन्तःपदे दृशा भाति।
मग्नोन्मग्नोभयविधमुन्मनया मयि पुनः पूर्णे ॥४४॥

अभेदप्रतिपत्तिलक्षणं कैवल्यमुद्भवः। तद्वताम् अन्तःपदे अहमात्मके स्वरूपे निमग्नं भाति इदम्प्रतीतिविषयं वेद्यं निमिषितं प्रतीयते। केन हेतुना दृशा विमर्शशक्त्या। इयमहन्ताच्छादितास्फुटेदन्तामयी सदाशिवदशा। अतः सुप्रबुद्धे अत एव पूर्णे मयि प्रकाशे मग्नोन्मग्नोभयविधं निमिषितत्वेनोन्मिषितत्वेन च द्विरूपं प्रतीयते। यथा हि जलधौ तरङ्गादि निमिषदुन्मिषच्च भवति, सर्वस्यामेव दशायां जलधिरेव तत्, तथा शिवादि विश्वं मदात्मकमेव सदुन्मिषति, मद्व्यतिरिक्तं च मय्येव निमिषतीति। एवं वस्तुयाथात्म्यप्रत्यभिज्ञाने हेतुः, उन्मनया स्वस्वरूपावस्थितिरेवोन्मना। यदागमः—

उन्मना सा तु विज्ञेया मनो यत्र न विद्यते। इति ॥४४॥

एवमुपदिष्टं प्रतीतिक्रमं पर्यालोचयतो यदोन्मनया पूर्णत्वसिद्धिरविचला, तदा स योगी सिद्धः सुप्रबुद्ध उच्यते। तस्येच्छामात्रेणाभिमतानां विभूती-

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

नामाविर्भावो भवतीत्याह श्लोकाष्टकेन । तत्रापरसिद्धयाविर्भावप्रकारं प्रपञ्चयति—

रविसोमतडिद्वज्राम्बुदवाडवजलधिगिरिगुहारण्यैः ।
दृढभावितात्मभावैर्योगी तत्कर्म निर्वहति ॥४५॥

वज्रं दम्भोलिः । दृढभावितात्मभावैः दृढमात्मत्वेन भावितैः रव्यादिभिः योगी तत् कर्म निर्वहति रव्यादिष्वर्थेषु यद्यज्जगत्प्रकाशनादि कर्म तत्तन्नित्यसिद्धं सदेव प्रत्यभिज्ञानदाढर्याद् अर्थक्रियाकारितालक्षणं निर्वाहं नयतीत्यर्थः । अत्रैतदाकूतम् —उक्तनयेन रव्याद्यर्थरूपेण स्वयमेवावतिष्ठते, विमर्शदौर्बल्येन तु विभिन्न इव स्थितः । प्रबलेन विमर्शेन भेदभ्रमणसंस्कारापगमे विश्वात्मकस्य सतः सर्वा एव सिद्धयो नित्यसिद्धा एव प्रत्यभिज्ञानदाढर्यादर्थक्रियाकारिण्यो भवन्तीति सर्वत्रैव सिसाधयिषुणा विश्वात्मकपरिपूर्णप्रकाशात्मकस्वस्वरूपादविचलतैव रव्याद्यात्मकत्वभावना सर्वात्मकत्वभावनाशेषतां नेतव्येति श्रीगुरवः ॥४५॥

या देवता यमर्थं करोति तेनार्थिनो दृढं तस्याम् ।
विधृताहङ्कारस्य क्षणेन सोऽर्थः समायाति ॥४६॥

या देवतास्ति लोके हेरम्बभारतीहरिहरादिका सा यं यमर्थं करोति प्रत्यूहध्वंसवाक्प्रवर्तनपालनसंहरणादिकं कार्यं निष्पादयति, तेनार्थिनः तेन प्रयोजनवतः तमर्थं सिसाधयिषोरित्यर्थः । तस्यां दृढं विधृताहङ्कारस्य तस्यामविचलत्वेनैकात्म्यमनुसन्दधतो योगिनः क्षणेन सोऽर्थः समायाति सोऽर्थो निर्विलम्बं सिद्धयति ॥४६॥

अथ तत्र सिद्धीराह—

धारणसंग्रहपाकव्यूहाप्रतिघातलक्षणैर्भूतैः ।
स्वस्वनिविष्टाहन्तैर्योगिन इष्टा क्रिया भवति ॥४७॥

धारणलक्षणं भूतं पृथिवी । संग्रहलक्षणमापः । पाकलक्षणं तेजः । व्यूहोऽवयवसंहननम्, तल्लक्षणं वायुः । अप्रतिघातोऽव्याहतप्रसरत्वम्, तल्लक्षणमाकाशः । एतैः पञ्चभिर्भूतैः प्रतिस्वं दृढमात्मत्वेनानुसंहितैः योगिन इष्टा क्रिया भवति सिसाधयिषितधारणादिकर्मसिद्धिर्भवति ॥४७॥

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

इति तन्मात्राकर्मज्ञानेन्द्रियमानसास्मिताधीषु ।
अव्यक्ते पुंसि तथा धृतचितिशक्तिश्च तत्कर्मा ॥४८॥

अस्मिताहङ्कारः । एतेषु तन्मात्रादिपुमन्तेषु तत्त्वेषु इति धृतिचितिशक्तिः उक्तेनैव नयेन विधृताहङ्कारः । स च तत्कर्मा तत्तत्कर्मसिद्धिमान् भवति ॥४८॥

रागनियत्योः काले विद्याकलयोर्गुहासरस्वत्योः ।
ईशसदाशिवशक्तिषु शिवे च तद्वत् कृताहन्तः ॥४९॥

गुहा माया । सरस्वती शुद्धविद्या । तद्वदिति तत्कर्मेत्यनुकृष्यते ॥४९॥
प्रसङ्गाच्छुकादीनां सिद्धयः क्षोदीयस्य क्षोदीयः इत्याह--

शुकवामदेवयोरपि कृष्णदधीच्योस्तथा च वैन्यस्य ।
भूतात्मयोगजं खल्वार्षे वैश्वात्म्यमाख्यातम् ॥५०॥

भूतात्मयोगजं पञ्चभूतधारणोद्भवम् । वैश्वात्म्यं भूतपञ्चकात्मप्रपञ्चरूपम् । आर्षे इतिहासादौ शास्त्रे । उक्तास्वेतासु सिद्धिषु गुहासिद्धचन्ता अपराः, अन्याः पञ्च पराः सारस्वत्यादिसिद्धयः ॥५०॥

अथेदानीं सर्वसिद्धिमूर्धन्यं सिद्धिद्वयं श्लोकाभ्यामाह—

कालाग्निकोटिदीप्तां दाहे पाशोच्चयस्य पटु तृप्तौ ।
अमृतौघवृष्टिमूर्ति स्मर शक्तिं भव गुरुर्जगतः ॥५१॥

कालाग्निकोटिदीप्तां प्रलयप्रबुद्धकालाग्निकोटिवत् सर्वाध्वनिर्दाहक्षमानवच्छिन्नज्वालाजालरूपतया दीप्यमानाम् । पाशोच्चयस्य दाहे शक्तिं पटु स्मर षडध्वलक्षणस्य पाशस्य दाहरूपायां शुद्धौ चितिं निरर्गलमनुसन्धेहि । तृप्तौ अमृतौघवृष्टिमूर्तिम् आप्लावनलक्षणायां तु शुद्धौ तद्वदेव सर्वाध्वक्रमणक्षमानवच्छिन्नसुधासमुद्रसहस्रसम्पातमयीं पटु स्मर । अत्र दाहाप्लावनाभ्यां सकलीकरणमप्युपलक्ष्यते, यदुक्तमाचार्यप्रवरैः—

कालाग्निकोटिरुचिमम्ब ! षडध्वशुद्धा-
वाप्लावनेषु भवतीममृतौघवृष्टिम् ।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

श्यामां घनस्तनननतां सकलीकृतौ च
ध्यायन्त एव जगतां गुरवो भवन्ति ।। इति ।

अत इष्टदेवतामूर्त्यात्मकसङ्कल्पकोटिमयत्वेन विश्वानुचिन्तनलक्षणं सकलीकरणमप्युपदिष्टं मन्तव्यम् । भव गुरुर्जगतो यावतोऽध्वनः शुद्धिः कृता, तावतो निश्शेषस्यैव जगतोऽनुग्रहीतृतया गुरुराचार्यप्रवरो भूयाः । अत्रैतदाकूतम्—यदेतच्छोधनं क्रियते न तदस्य देहात्मकतया संक्षिप्तस्य षडध्वसंघातस्य, अपि तु सर्वस्यैव, उक्तनयने सर्वस्यैवाचार्यादेर्विश्वशरीरत्वात् । न ह्येतदाचार्यादित्वं यत् प्रतिनियतदेहेन देहित्वम् । अतो विश्वशरीरेण सता विश्वस्यैव शुद्धिः कार्येति शास्त्रोपपादितयुक्तिक्रमेण प्रकाशैकात्म्यमस्य विश्वस्य पश्यतो यत् स्वरूपावस्थानं स सर्वस्यैवाध्वनो दाहः । तदेव च प्रकाशैकात्म्यं विमृश्यमानं चिच्चमत्कारात्मकमाप्लावनम् । "प्रकाशस्य विमर्शैकघनताप्रत्यभिज्ञानदार्ढ्यात् परानन्दाविर्भावः सकलीकरणम्" इति श्रीमद्योगीश्वराचार्यपादाः ।। ५१ ।।

एवं गुरुलाभरूपां परामाद्यां सिद्धिमुपदिश्य द्वितीयामप्युपदिशति—

ख्यातिमपूर्णां पूर्णख्यातिसमादेशदार्ढ्यतः क्षपय ।
सृज भुवनानि यथेच्छं स्थापय हर तिरय भासय च ।।५२।।

सारस्तवायं सर्वोपदेशनिष्कर्षः । अपूर्णा पूर्णा चेति ख्यातिद्वयमेवास्ति, न वस्त्वन्यत् । तत्र पूर्णख्यातिं वस्तुभूतां सुदृढमवष्टभ्य कादाचित्कत्वादवस्तुभूतामपूर्णां ख्यातिं क्षपय प्रतिक्षणमनुसन्धानदार्ढ्यादुन्मूलय । तथा क्षपयन् सृज भुवनानि यथेच्छं स्थापय हर तिरय भासय च । तथावस्थितस्य ते ये स्वस्वरूपावारकतया सम्मता पदार्थानामाभासनशक्त्यादयो विकल्पाः, त एव ते जगत्सृष्ट्यादिरूपतया प्रत्यभिज्ञाताः सर्वसिद्धिसमष्ट्यात्मकं पारमैश्वर्यमाविष्करिष्यन्ति । अत एवं स्वरूपे नित्यमवतिष्ठस्वेत्युपदेशसर्वस्वम् । अत्र 'रविसोम' इत्यादिषु शिवान्तासु विभूतिषु 'तत्कर्म निर्वहति' इत्यादिना ताटस्थ्यप्रकाशनात् 'स्मरशक्ति भव गुरुर्जगतः' इति, 'अपूर्णख्यातिं क्षपय भुवनानि सृज' इति च सादरमुपदेशाच्च पक्षपातः प्रत्याय्यते । अत एवं प्रत्यभिज्ञातस्वरूपेण सिद्ध्यन्तरस्याभासभूतत्वात् तदभिनिवेशो न कार्यः । अग्रे तु सिद्धिद्वये नित्यप्रत्यवमर्शाभिनिवेशिना भवितव्यमित्यनक्षरमुपदिश्यत इति शिवम् ।। ५२ ।।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

अथ शास्त्रमुपसंहरन्नाह–

इति बोधितः स इन्द्रो देवेष्वधिकारमलमपोह्य स्वम् ।
आविष्टशक्तितत्त्वः शिववदपश्यत् स्वमात्मानम् ।। ५३ ।।

इति प्रथमस्कन्धेन शरीरबाह्याभिमते शिवादिवस्तुनि शरीरतां सोपपत्तिकं प्रत्यभिज्ञाप्य अथ विश्वशरीरत्वशुद्धौ द्वितीयस्कन्धेन शरीरत्वेन प्रतियोगिभूतस्य सतः स्वस्वामिभावलक्षणं भेदभ्रममपनेतुं विश्वस्य प्रकाशैकघनत्वमुपपत्तिभिः स्थिरीकृत्य तथा स्थिरीभूतस्य वैश्वात्म्यस्य विपरीतभावनादिभिर्दोषैर्दौर्बल्यं मा भूदिति तृतीयस्कन्धेन विविधान् वैश्वात्म्यविमर्शनप्रकारानुपदिश्य चतुर्थेन स्कन्धेन सिद्धचात्रिर्भावं जगद्गुरुत्वशिवत्वयोर्महासिद्धयोर्नित्यसिद्धत्वप्रत्यभिज्ञानलक्षणां महासिद्धिं चाविचलामुक्त्वा बोधितो वस्तुयाथात्म्यं सम्यक्प्रत्यभिज्ञापितः स इन्द्रः स्वं देवेष्वधिकारमलमपोह्य स्वर्गस्याहमधिपतिरिति परस्वरूपसंकोचलक्षणं पशुत्वमवधूय स्वात्मानं शिववदपश्यत् शिवो बोधकत्वेन पुरोवस्थिताः श्रीमदाचार्यविरूपाक्षनाथपादाः एवं बोधितस्य तस्य गुरुव्यतिरेकेण शिवान्तरासम्भवात् तद्वदपश्यत् । न तदानयोर्बोध्यबोधकयोर्ज्ञानि तारतम्यकला काचित्, अपि तु 'जगतोऽस्य गुरुः साक्षात् परमेश्वर एवास्मि' इति निष्प्रत्यवायं प्रत्यपद्यतेति शिवम् ।। ५३ ।।

इति श्रीविरूपाक्षपञ्चाशिकायां महामाहेश्वरविद्याचक्रवर्त्तिकृतविवृतिसमेतायां विभूतिस्कन्धश्चतुर्थः ।।

स्वरूपप्रत्यभिज्ञानमनायासेन लिप्सुभिः ।
पञ्चाशिकासुविशदा वृत्तिरेषा निषेव्यताम् ।।

कृतेयं विवृतिर्लघ्वी श्रीविद्याचक्रवर्तिना ।
गोविन्दचन्द्रधीनाम्नि निकषे विनिवेशिता ।।

नमः शिवाय गुरवे देवायानन्दमूर्त्तये ।
परब्रह्मस्वरूपाय देवदेवाय शम्भवे ।।

।। समाप्तश्चायं ग्रन्थः ।।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

श्लोकार्धानुक्रमणिका

श्लोकांशाः	पृष्ठाङ्काः
अकठोरमद्रिमर्शज्वाला	१५
अक्रमता मे क्रमिकं	१६
अङ्गारवदिव भस्म	१५
अथ विद्यया भवेद्	२१
अन्तःस्थितो ममान्त	१२
अन्तर्मुखं स्वरूपं	१५
अमृतौघवृष्टिमूर्ति	२४
अविकल्पं भावयतः	१७
अव्यक्ते पुंसि तथा	२४
अस्तमितमर्थजातं भात्वा	२०
अहमिति स एक उक्तो	६
अहमेकोऽनस्तमितप्रकाश	१२
आद्यन्तप्रत्याहृतवर्णगणा	६
आधारभेदलक्ष्यं बहु	९
आभास्याभासकतां स्फुटयन्त्यो	७
आविश्य चेष्टयन्तीं धारय	४
आविष्टशक्तितत्त्वः	२६
इच्छामात्रेणेत्थं गिर्योरपि	४
इति तन्मात्राकर्मज्ञाने	२४
इति बोधितः स इन्द्रो	२६
इत्थं चितिमखिलेऽध्वनि	३

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

ईशसदाशिवशक्तिषु २४
ईश्वरता कर्तृत्वं स्वतन्त्रता ५
उत्क्रम्य विश्वतोऽङ्गान् ३
उद्भविनां केवलया २२
एकः स आत्मनाऽसौ नहि ७
एतेऽहन्तायाः किल पर्यायाः ५
कण्ठलुठत्प्राण इव व्यक्तं ३
कात्स्न्येनाविष्टमिवारण्य १५
कालाग्निकोटिदीप्तां दाहे २४
क्षोभे च परिस्पन्दा १३
ख्यातिमपूर्णां पूर्णख्याति २५
गन्धगजसमररसिकाय २
ग्राहकमेवं त्वजडं जड २१
चित्रमवधूय भेदं १९
चिद्गगनक्षीरोदं स्वय १०
जगति प्रसरदनन्त ८
जडतात्मिकामिदन्ता २२
जीवाख्यो मद्योगान्मद्वत् १८
ज्ञातारं मां ज्ञानं शक्ति १७
ज्ञातृज्ञानज्ञेयात्मकमखिलं १४
ज्ञानस्य ज्ञातृतनो १५
तच्छक्तिवीचिभिरसा १०
तदिदं भागविभेदो न १३
ते भानतिरोधिकृती शक्ती १३
त्रितयमपि मां विनैकं १९
दग्ध्वा प्रकाशरूपं शुभ्रं १४

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

दृढभावितात्मभावैर्योगी	२३
देहेऽस्मितया यद्वज्जडयो	४
द्यावापृथिवी देशः कालो	१३
धारणसंग्रहपाकव्यूहा	२३
धूमवती तिरोधौ	१३
धूमावती पृथिव्यां	१४
न श्रौत्रादिषु तदपि	१७
निजधर्मिणं प्रकाशं	१४
निजसिद्धिबीजमस्मै	२
पदतत्त्वकलात्मार्थो	१०
पीतादिषु हि न नीलं	१७
प्रत्यवमर्शात्मासौ चितिः	६
प्रथमो मध्यम उत्तम	१२
प्राणिमि शून्योऽस्मीति	२
बिन्दुं प्राणं शक्ति मन	४
बिन्दुर्विमर्शधर्मा	८
भूतात्मयोगजं खल्वार्षे	२४
भेदिनि मिथः स मुक्त	७
मग्नोन्मग्नोभयविध	२२
मत्तस्तु महापुरुषात्	१२
मत्स्थमपि भुवनवृन्दं	२१
मद्धानैकात्म्येन स्रोत	२०
मद्वद् ज्ञाता ज्ञानं	१६
मायाविमोहितात्मा	२१
मार्तण्डः परमोऽसौ	१०

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

यश्च विभागोऽस्य पुनर्बहुधा	११
यस्य विमर्शस्य कणः	१०
या देवता यमर्थं करोति	२३
युष्मच्छेषापोहवदह	१३
रविसोमतडिद्वज्राम्बुद	२३
रागनियत्योः काले	२४
रूपादिपञ्चविषयात्मनि	८
वायौ स्पन्दा विभ्वी	१४
विच्छिन्नाविच्छिन्ने	७
विधृताहङ्कारस्य क्षणेन	२३
विमतिपदमङ्ग सर्वं	२
विषयशरीरेन्द्रियधी	३
वेदितरि वित्तिमुखतो	१८
वेद्यं स्वक्रमविद्धां	१८
व्यक्तं हि पदार्थात्मकमिदं	९
शक्तिर्माया प्रकृतिः	११
शक्तिर्विमर्शरूपा शरीर	१४
शक्त्यात्मकमव्यक्तं तत्रैव	९
शुकवामदेवयोरपि	२४
शून्यपदादीलावधि	२
षोडशधैनं नवधा षोढा	९
सन्तानान्तरवाहे ज्ञाता	१८
सम्पन्नोऽस्मि कृशोऽस्मि	२
सम्भेदविभेदाभ्यां सृजति	८
सामानाधिकरण्यादिद	२२
सृष्ट्वा भुवनानि यथेच्छं	२५

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

सोमरविवह्निलक्षण	८
स्मृतिरनुभवस्य भानं	१९
स्मृत्यनुभवानुसंहिति	१९
स्वपरावभासनक्षम	६
स्वस्वनिविष्टाहन्तै	२३
स्वाङ्गे चिद्गगनात्मनि	४
स्वेन विना मृतमण्डं	१०
स्वैयंहमाभासयिता	१९

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

उद्धृतवचनश्लोकार्धसूची

विरूपाक्षपञ्चाशिकाविवृत्याः

अन्यतन्त्रेषु ये मुक्ताः	२१
अन्यायात् कथनं कुर्वन्	२२
अर्थेनैत्र विशेषोऽस्ति	१८
उन्मना सा तु विज्ञेया	२२
कालाग्निकोटिरुचिमम्ब	२४
तेऽत्र रुद्राणवः प्रोक्ताः	२१
प्रकाशस्य विमर्शैकघनता	२५
श्यामां घनस्तननतां	२५
स्वरूपज्योतिरेवान्तः	६

उद्धृतग्रन्थग्रन्थकारनामानुक्रमणी

विरूपाक्षपञ्चाशिकाविवृत्याः

आगमः	६, २१, २२
आचार्यप्रवरः	२४
योगीश्वराचार्यः	२५

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः
श्रुतम् मे गोपाय

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji